महात्मा बनादास विरचित

विस्मरण सम्हार

सं० डा० भगवती प्रसाद सिंहं

उत्तरी भारत की रामभक्ति शाखा के महान् संत

महात्मा बनादास
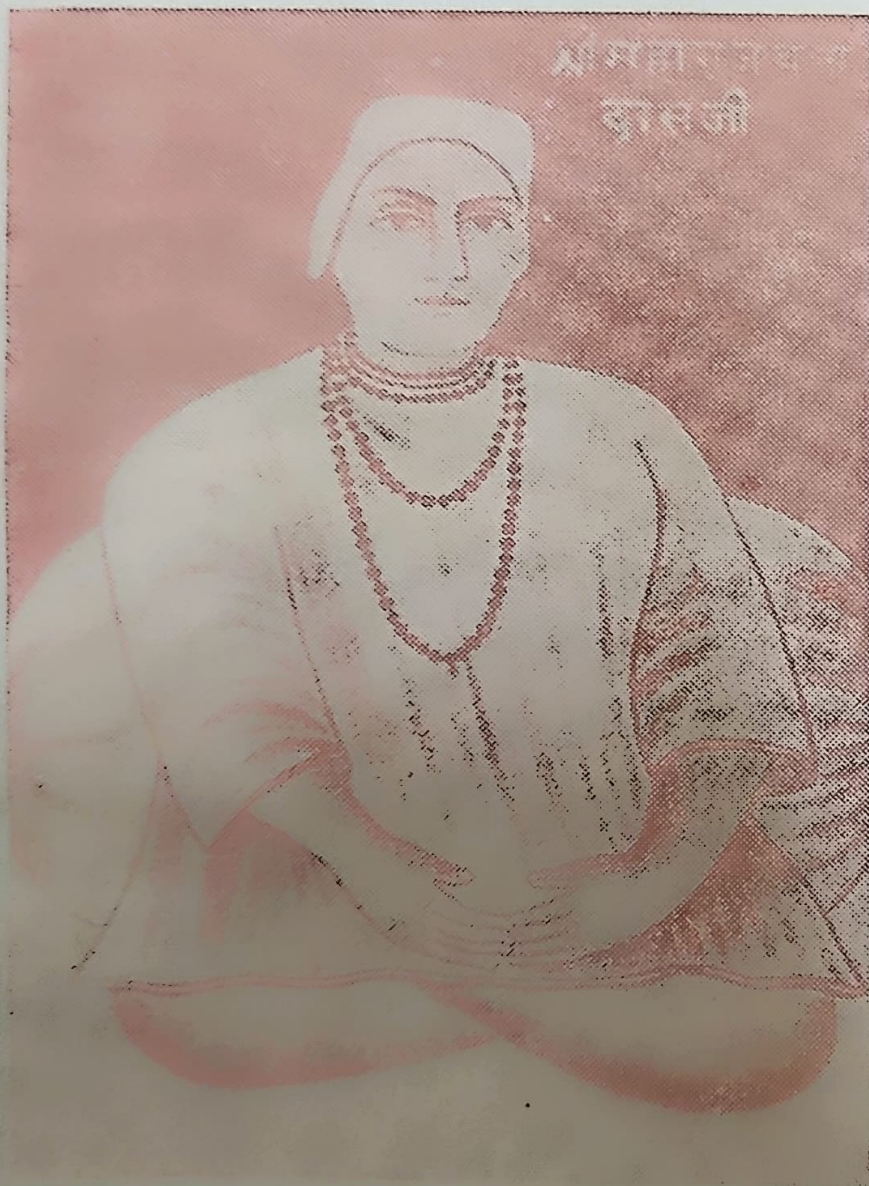
आविर्भाव
पौष शु० ४, सं० १८७८

लोकान्तरण
चैत्र शु० ७, सं० १९४९

श्री भवहरण कुञ्ज

महात्मा बनादास मार्ग, तुलसी उद्यान, श्री अयोध्याजी

बिसमरन-सम्हार

रचयिता :

महात्मा "बनादास"

सम्पादक :

स्व० डॉ० भगवती प्रसाद सिंह
निवर्तमान आचार्य तथा अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
गोरखपुर विश्वविद्यालय

प्रकाशक :
महात्मा बनादास आश्रम
तुलसी उद्यान, अयोध्या

❁ नम्र निवेदन ❁

उत्तर भारत के महान संत महात्मा बनादास जी महराज १९वीं शताब्दी के अयोध्या के जगमगाते रत्न माने जाते हैं ! उनके विलक्षण त्याग और विरक्ति तथा उनकी विशिष्ट पारमार्थिक अनुभूतियाँ एवं उच्चस्तरीय आध्यात्मिक उपलब्धियों के कारण वे रामभक्ति शाखा के अग्रगण्य संतों में हैं। उन्होंने ६४ ग्रन्थों की रचना की जो आध्यात्मिक साहित्य की अमूल्य निधि है।

"विस्मरण-सम्हार" उनकी एक ऐसी रचना है जो साधु-सन्तों व साधकों में बहुत लोकप्रिय है। परमार्थ साधकों के लिए उसमें परम उपयोगी सामग्री तथा मार्ग-दर्शन उपलब्ध है। इसका प्रथम संस्करण सन् १९६० में मेरे पूज्य श्वसुर प्रबुद्ध मनीषी स्व० डॉ० भगवती प्रसाद सिंह ने सम्पादन कर प्रकाशित कराया था। इधर कुछ समय से यह ग्रन्थ-रत्न उपलब्ध नहीं था अतः अनेक भक्तों तथा सन्तों के विशेष आग्रह पर दूसरा संस्करण प्रकाशित किया जा रहा है। आशा है कि परमार्थ-प्रेमी व साधक जन इससे लाभान्वित होंगे।

रामनवमी, १९९८ —श्रीमती डॉ० सावित्री देवी

महात्मा बनादास आश्रम

अयोध्या–२२४१२३

प्रस्तावना

महात्मा 'बनादास' हिन्दी साहित्य के एक अत्यन्त अल्पप्रसिद्ध एवं एकान्तसेवी भक्तकवि हैं। अपने सम्बन्ध में इनका स्वयं कहना है—

'बनादास' को बस कहा, मानहु बनकी घास।
बन उपजी बन ही गई, कोऊ गया न पास।।

पूर्वज होने से इनकी रचनाओं से मेरा परिचय बाल्य-जीवन से ही रहा है। निदान आगरा विश्वविद्यालय में पी०एच०डी० उपाधि के लिये स्वीकृत शोध प्रवन्ध में मैने बनादास जी की कृतियों का ही विशेष अध्ययन प्रस्तुत किया। इनकी ६४ रचनाओं में से के अभी अधिकांश अप्रकाशित हैं। इससे हिन्दी संसार अब तक उनका रसास्वादन नहीं कर सका है। 'बिसमरन-सम्हार' का प्रकाशन इस आवश्यकता की पूर्ति की दिशा में किया गया एक क्षुद्र प्रयास है।

ग्रन्थकर्ता के शब्दों में 'बिस्मरन-सम्हार' की रचना का उद्देश्य है— सांसारिक प्रपंच में फँसकर अपने वास्तविक सच्चिदानन्द स्वरूप को भुला देने वाले जीव को ईश्वरोन्मुख करना—

यह जग भूलसराय सनातन भूलि जात सब कोई।
'बनादास' भूलत नहि सोई रामकृपा जब होई।।
यह 'बिसमरन-सम्हार' यही हित निज-निज भूल सम्हारैं।
संसारिन को भूल सिन्धु सम को कहि पावत पारै।।

ग्रन्थ के २७ विश्रामों में इसी भूल को सुधारने के लिये साधना के आवश्यक तत्वों का निरूपण किया गया है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि इसका निर्माण साधकों को दृष्टि में रखकर हुआ है। बनादास जी का दावा है—

सब ज्ञानन का सार है, यह 'बिसमरन-सम्हार'।
पढ़ा सुना याको करै, नहि भूलै कोउ बार।।
अचल रहै निज रूप में, चित की बृत्ति सुधारि।
'बनादास' गिरि की तरह, हटै न बिघन बयारि।।

भोगपरक पाश्चात्य संस्कृति के समाज में उत्तरोत्तर बढ़ते हुए प्रभाव के बावजूद महात्मा बनादास की विरक्ति भावापन्न कृतियों के प्रति अपूर्व लोकाकर्षण का अनुभव कर, छपाई और कागज की वर्तमान गगनचुम्बी दरों के बावजूद, उनकी शेष रचनाओं के प्रकाशन की व्यवस्था करने का साहस संजोया जा रहा है, उसकी सफलता 'परम-प्रकाशक' की कृपा पर निर्भर है।

अपनी प्रीति और प्रतीति के अनुसार, साधकों द्वारा बनादास जी की इस महावाणी से गृहीत यत्किंचित् आलोक मेरा श्रम सफल कर देगा।

श्री रामविवाह पंचमी, सन् १९९० — भगवती प्रसाद सिंह
साकेत, बेतियाहाता
गोरखपुर–२७३००१

महात्मा बनादास : जीवन-परिचय

महात्मा बनादास का आविर्भाव पौष शुक्ल ४, सं० १८७८ को उत्तर-प्रदेश के गोंडा जिले में हुआ था। इनकी जन्मभूमि, अशोकपुर, अयोध्या से पाँच कोस (१५ कि.मी.) उत्तर फैजाबाद से गोंडा जानेवाली सड़क के पश्चिम २ कि.मी. दूरी पर स्थित हैं। ये जाति के क्षत्रिय थे। इनके पूर्वजों का मूलस्थान बैसवाड़ा (उन्नाव-रायबरेली) था। शताब्दियों पूर्व वे रंजीतपुरवा (उन्नाव) नामक स्थान से आकर अयोध्या के निकटस्थ इस भूभाग में बस गये थे। इनके पिता गुरुदत्त सिंह साधारण खेती-बारी से जिविका चलाते थे। उन्होंने पुत्र का नाम बनासिंह रखा। साधनहीनता के कारण वे इनकी शिक्षा का समुचित प्रबन्ध न कर सके। बनादास जी को इसका अन्त तक खेद रहा–

बिद्या बिधि नाहीं लिखी, भूलि भालहू माँहि ।
पढ़े ककहरा बालपन, मात्रा साबित नाँहि ।।

इतना होते हुए भी दीर्घकालव्यापी साधना के पश्चात् जब इन्होंने अनेक उत्कृष्ट काव्यग्रन्थों की रचना कर ली तो अपनी आरम्भिक अल्पज्ञता पर इन्हें स्वयं आश्चर्य होता था, किन्तु प्रभुकृपा से कुछ भी असम्भव नहीं, यह समझकर ये अपने मन को सान्त्वना देते थे –

ऐस्यो पै नाम प्रभाव न जानिहैं ताके हिये को मसाल जरावै ।
दीरघ-ह्रस्व को भेद न ज़ानत अक्षर पै भरि मात्रा लगावै ।।
पंख सो हीन उड़त अकाश में 'दासबना' सो दसा लखि पावै ।
नाम प्रताप चहै सो करै नहिं ताते हिये कछु ताजुब आवै ।

बाल्यावस्था में ही इनकी प्रवृत्ति आध्यात्मिक साधना की ओर मुड़ी। इसी समय इन्होंने पुनर्जन्म न लेने का व्रत ले लिया–

बाढ़ी श्रद्धा हिये बालपन ते अति भारी ।
यहि तन नाघौं जक्त फिरौं नहिं अबकी पारी ।।
बिघन बिपति जो परैं सहौं सो सुठि हरषाई ।
याहि दृढ़ संकल्प जाहि ते फिरि नहिं आई ।।

पुत्र की ऐसी मानसिक स्थिति देख कर गुरुदत्त सिंह ने अपने कुलगुरु गोस्वामी लक्ष्मणवत से उसे मन्त्रदीक्षा दिला दी। उस समय ये बिलकुल अबोध थे—

गुरु करने को मोंहि न ग्याना। देखि महातम पितु अनुमाना।
तिनके सरन दिये करवाई। यतनी धर्म बुद्धि तब आई॥

इसी अवस्था में इन्होंने गुरु की आज्ञा प्राप्त कर शिव की पूजा, रामचरितमानस का पाठ और गीता के अनुसार योगाभ्यास की क्रियाएँ आरम्भ कर दीं।

पिता को आशंका हुई कि कहीं उनकी एकमात्र सन्तान घरबार छोड़कर विरक्त न हो जाए। अतः लौकिक जीवन में रुचि उत्पन्न करने के लिए उन्होंने इनका विवाह कर दिया। इनकी ससुराल देवरिया जिले के मनिया-समोगर गाँव में बसे हुये बिसेन क्षत्रियों के यहाँ हुई। विवाह के उपरान्त गृहस्थजीवन व्यतीत करते हुए भी इनकी अध्यात्मसाधना का प्रवाह पूर्ववत् गति-शील रहा।

घर की आर्थिक दशा शोचनीय देखकर इन्होंने भिनगाराज्य (बहराइच) की सेना में नौकरी कर ली और लगभग सात वर्ष तक वहाँ कार्य करते रहे। इस सैनिक जीवन की छाप इनकी वाणी में अंत तक बनी रही। गृहत्याग के पश्चात् भी ये अपने को अध्यात्मक्षेत्र में राम का सिपाही मानते रहे। ये प्रायः कहा करते थे—

हम तौ हैं रघुबीर सिपाही।
निसिदिन रामनाम रटिबे को और हुकुम हमरे सिर नाहीं।
काया मुलुक जगीर मिली है सुबस बसावन सो मोंहि चाही॥
बिरति चर्म असि ज्ञान अनूपम सुमति सनाह न पटतर जाही।
'दासबना' प्रभु बिरद भरोसे बसत सदा सरजूतट माहीं॥

जिस समय ये भिनगा में नौकरी कर रहे थे, इनके चचेरे भाई मोतीसिंह के उद्योग से घर की स्थिति सुधर गई। उन्होंने बलरामपुर राज्य में बहुत सी जमीन लेकर खेती का समुचित प्रबन्ध कर लिया। उनके अनुरोध से बनासिंह नौकरी छोड़कर घर चले आये। यहाँ रहते अधिक दिन नहीं बीते थे कि १२ वर्ष की आयु में इनके एकमात्र पुत्र का परलोकवास हो गया। बनादास जी के जीवन में इस घटना ने युगान्तर उपस्थित कर दिया। सामान्य लोगों की भाँति इसे दैवकोप मानने के बदले इन्होंने आराध्य की असीम कृपा का फल माना।

इनका कहना है कि पुत्रशोक से मेरी सांसारिक आसक्ति समाप्त हो गई। मन की चंचलता दूर हो गई और शरीर क्षीण होने लगा। कृपा सिन्धु ने सांसारिक बन्धन की इस प्रबलतम कड़ी को तोड़कर मेरे उद्धार का मार्ग प्रशस्त कर दिया। 'उभयप्रबोधक रामायण' में इस स्थिति की ओर लक्ष्य करते हुए ये लिखते हैं—

> कृपापात्र को रुज मिलै निर्धनता अपमान।
> कुल कुटुम्ब को नास भै अति करुना भगवान॥
> अति करुना भगवान बंस को छेदन कीना।
> ममता रही न कहूँ सिथिल मन तन सुठि खीना॥
> 'बनादास' पाछे दिये दृढ़ता आतमज्ञान।
> कृपापात्र को रुज मिलै निर्धनता अपमान॥

ये पुत्र के शव के साथ ही अयोध्या चले गये। उस दिन सं० १९०८ की कार्तिक पूर्णिमा का महापर्व था। इस समय इनकी आयु ३० वर्ष दो महीने तीन दिन की थी—

> सुदी कार्तिक पूर्णिमा, महापरब जग जानि।
> तब आयों प्रभु धाम में, सन सम्मत सोइ मानि॥
> तीस बरष की है बयस, जुगल मास दिन तीन।
> एक भरोसो राम को, और आस भै छीन॥

अयोध्या में पहले ये स्वर्गद्वार पर रहे। वर्षाऋतु में वह स्थान पानी से भर गया। अतः अन्यत्र कुटी बनाने की चिन्ता हुई। अपने प्रथम ग्रन्थ 'अर्ज-पत्रिका' में इस समस्या को हल करने के लिये इन्होंने प्रभु से निवेदन इन शब्दों में किया है—

> राम मोहि आसन भूमि बताबो।
> दूजो कौन जाहि गोहरावों॥
> कोउ कहै मेरो मंदिर छावो कोउ चहै टहल करावो।
> कोउ कहै कछु देहु रहौ तब का दैकै समुझावों॥
> कोउ खातिर करिकै लै आवत तहँ मेरे मनहिं न भावो।
> जब गृह रह्यौं गूंथ नहिं बांध्यों अब तव दास कहावों॥
> कासे कहाँ कुटी मेरो छावो बरचि न दै बनवावों।

अन्त में इन्होंने रामघाट पर रहने का निश्चय किया। वहाँ एक अशोकवृक्ष के नीचे गुफा बनाकर ये निर्लिप्त भाव से भजन करने लगे—

आसन है सन्तोष तख्त पर रामघाट के नाके हैं।
आप से आवैं ताको पावैं करत कभी नहिं फाके हैं॥
अब तो बादसाह लघु लागैं जुगल माधुरी झाँके हैं।
'बनादास' सियराम भरोसे अवध सहर के बाँके हैं॥
तरु असोकतर है वर छाया लोटि पोटि रज घस्ते हैं।
दिल की सकल सियावर जानैं नहिं काहू से वस्ते हैं॥
नेही नात कुटुम्ब न मानैं जगत भरोसो पस्ते हैं।
'बनादास' रघुनाथ आस यक भाषत जो उर भस्ते हैं॥

कुछ दिनों तक अयोध्यावास करने के अनन्तर इनकी इच्छा देशाटन करने की हुई। इनकी तीर्थयात्रा का स्वरूप इस प्रकार था—

कासी से उठावै राम नाम लव लावै,
प्रागराज में अह्नावै चित्रकूट महँ आवई।
नीमसार धावै हिय अति हरखावै,
छेत्र सूकर नहावै मनोरमा पर जावई॥
मिथिला को पाय नहि आनँद समाय,
बक्सर बारानसी पुर कौसल चलावई।
बदै 'बनादास' परिक्रमा को सरूप यह
रीझैं सियाराम मुँह माँगै सोई पावई॥

पर्यटन समाप्त होने पर ये फिर अयोध्या लौट आये और रामघाट वाले अपने पुराने आसन पर रहने लगे। परमहंस सियावल्लभशरण जी से, जिन्हें इन्होंने सद्गुरु माना है, इनकी भेंट इसी स्थान पर हुई। उनसे इन्होंने भक्ति, ज्ञान और योगसाधना का सम्यक् ज्ञान प्राप्त किया। उन्ही की प्रेरण से ये 'अजगरवृत्ति' धारण कर चौदहवर्षीय कठोर साधना में निरत हुए। इनकी प्रतिज्ञा थी—

देहौं देखाय महातम नाम कौ तौ जन राम कौ हौं सुचि साँचो।
आस औ वासना के बसि ह्वै जग में नट माफिक नाच नं नाचो॥
'दासबना' कलिकाल कराल में, नातौ अहै सब साधुता काँचो।
है दसरथ्थ के लाल ही को बल विष्णु विरंचि महेस न जाँचो॥

चौदह वर्ष व्यापी राम नाम साधना में इनके आदर्श भरत थे। 'बनादास' जी का विश्वास था कि जिस प्रकार १४ वर्ष तक नन्दिग्राम में तपोमय जीवन व्यतीत करके भरत ने अपने आराध्य राम का साक्षात्कार प्राप्त किया था उसी भाव को धारण कर तपश्चर्या करने से आज भी राम का दर्शन हो सकता है—

चौदह वर्ष को राम गये बन भूप तजे तन जान जहाना।
औध निवासी सहे सब संकट कै तव औ ब्रत-संजय नाना॥
लक्ष्मण औ सिय संग गये भये भस्म घरै महँ भर्त सुजाना।
'दासबना' सनबंध जौ राम से तौ किन लीजिये पंथ पुराना॥

चौदहवर्षीय तपस्या की समाप्ति पर इन्हें इष्टदेव ने साक्षात् दर्शन देकर कृतार्थ किया। 'आत्मबोध' में इस घटना का वर्णन करते हुए ये लिखते हैं—

करुनामय रघुबंसमनि, सहि न सके यह पीर।
हृदय कमल बिगसित भयो, प्रगटे सिय रघुवीर॥
अरुन चरन पंकज बरन, कल कोमल नवनीत।
सूरति में आयो जबै, नास भई भवभीति॥

'बिसमरन सम्हार' की निम्नांकित पंक्तियाँ भी इसी ओर संकेत करती जान पड़ती हैं—

जुग-जुग बिरद बिराजत नूतन श्रुति पुरान मुनि गावैं।
अधम उधारन पतितन तारन असरन सरन बतावैं॥
सो भरि नैनन आजु बिलोके पाये निज मन माना।
'बनादास' प्रभु कृत किमि गोवै ताते प्रगट बखाना॥
महल तिमँजिला अति सुखदाई मुक्ति तख्त तहँ राजै।
उपमा हेरे मिलत न कतहूँ कवि कोबिद मति लाजै॥
राम कृपा ते करि बहु साधन सिद्धि अवस्था पाई।
कोटिन मद्धे कोऊ सन्त जन जहाँ बिराजैं जाई॥
मुक्ति तख्त पर सान्ति बिछौना ज्ञाननींद में सोवैं।
'बनादास' बिज्ञान उसासैं दुतिया कतहुँ न जोवैं॥

'बनादास' जी की अन्य कृतियों में प्राप्त ब्रह्म-संस्पर्श एवं दर्शन विषयक ये पंक्तियाँ कितनी मर्मस्पर्शी हैं—

हम तो आतम राम हैं, सुद्ध सच्चिदानन्द ।
सेये सीताराम के, छूटि गयो भवफंद ।।
सेवत सेवत सेव्य के, सेवकता मिटि जाय ।
'बनादास' तब रीझिकै, स्वामी उर लपटाय ।।
नाचत बीत्यो बहुत दिन, रीझ्यो नहिं रिझवार ।
'बनादास' तेहि नाच को, बार बार धिक्कार ।।
कला कुसल सो सुन्दरी, घूँघट को नहिं दीन ।
'बनादास' जाको अदा, एक ताल बसि कीन ।।

इसके पश्चात् रामघाट छोड़कर ये अयोध्या नगर में चले आये और वर्तमान 'तुलसी-उद्यान' पूर्व विक्टोरिया-पार्क की पश्चिमी सीमा से संलग्न भूमि पर एक मुराव की बाड़ी में रहने लगे । यहाँ कभी-कभी मौज में आकर ये गाया करते थे—

मूली के खेत में तख्त पड़ा है ऊपर कुरिया छाई है ।
'बनादास' तापै सुख सोवैं जानैं लोग मुराई है ।।

बनादासजी को वह स्थान पसन्द आ गया । अतः मुराव की बाड़ी में ही एक किनारेपर उन्होंने अपनी एक छोटी सी फूसकी झोपड़ी बना ली और भजन करने लगे कालान्तर में मुराव ने बाड़ी करना छोड़कर उस भूमि को इन्हें सौंप दिया । इन्होंने कुटी को आश्रम का रूप देकर उसका नाम 'भवहरणकुंज' रखा । इसके बाद ये आजीवन इसी स्थान पर रहे—

कुंज भवहरन अवध मधि उत्तम अवसि मुकाम ।
को महिमा ताकी कहै रामजानकी धाम ।।
रामजानकी धाम कामधुक् मोंहि कलपतरु ।
'बनादास' मम हेतु और सारो जग थल मरु ।।
पाये सब मन कामना एक भरोसे नाम ।
कुञ्ज-भवहरन अवध मधि उत्तम अवसि मुकाम ।।

'बनादास' जी के हाथ के लगाये अशोक, बेल और सिहोर के वृक्ष अब तक इस आश्रम में विद्यमान है।

कहते हैं एक बार रीवाँ के महाराज रघुराज सिंह अयोध्या आये। अनेक मन्दिरों और महात्माओं का दर्शन करते हुए जब वे 'भवहरणकुंज' के सामने पहुँचे तो हाथी से उतरकर आश्रम के भीतर गये। उस समय 'बनादास' जी अशोकबृक्ष के नीचे जमीन पर लेटे हुए थे। रघुराज सिंह को आते देख कर इन्होंने करवट बदल ली और उनकी ओर पीठ कर दिया। इस व्यवहार से खिन्न होकर रघुराज सिंह बिना प्रणाम किये तत्काल ही लौट पड़े रात में जब वे लेटे तो देर तक नींद नहीं आई। सो जाने पर स्वप्न में उन्हें ऐसा आभास हुआ जैसे किसी महात्मा की अवज्ञा करने के फलस्वरूप वे घोर क्लेश पा रहे हों। प्रातः काल ब्रह्ममुहूर्त में ही उठकर वे 'भवहरणकुंज' आये और बनादास जी से अपने द्वारा किये गये उनके अपमान के लिये क्षमायाचना करने लगे। बनादास जी ने उन्हें सान्त्वना देते हुए कहा, जिसे मान की भूख नहीं, अपमान की परवाह नहीं, उसकी अवहेलना का अर्थ ही क्या ? फिर भी यदि तुमको अपने कृत्य पर पश्चाताप हुआ है तो उसे ही मेरी क्षमा समझो।' इसके बाद रीवाँ नरेश ने कुटी तथा मन्दिर के निर्माण के लिए बनादास जी के चरणों में १० हजार रुपये की दस थैलियाँ भेंट की। बनादास जी ने क्षत्रिय होने के नाते अपने को दान लेने का अनधिकारी कहकर उसे ठुकराते हुए यह दोहा कहा—

जांचब जाब जमाति जर, जोरू जाति जमीन।
जतन आठ ये जहर सम, 'बनादास' तजि दीन ॥

महाराज रघुराज सिंह के बहुत अनुनय विनय करने पर इन्होंने 'भव-हरण कुन्ज' में उस रूपये से एक राममन्दिर बनवाने की अनुमति इस शर्त पर दे दी कि उसका सारा प्रबन्ध रीवाँ राज्य की ओर से ही होगा, और इनका उससे कोई सरोकार न रहेगा। 'भवहरण-कुन्ज-आश्रम' का वर्तमान रामजानकी मन्दिर उसी धन से निर्मित हुआ था।

महात्मा बनादास की लोकोत्तर सिद्धियों की चर्चा करते हुये 'अयोध्या का इतिहास' के रचयिता अवधवासी लाला सीताराम ने लिखा है कि अयोध्यानरेश प्रताप नारायण सिंह 'ददुआ साहब' उत्तराधिकार सम्बन्धी अपने मुकदमे में इलाहाबाद हाईकोर्ट में हार गये थे। उसके बाद प्रिवी कौन्सिल (लंदन) से उन्हें १८८९ ई० में बनादासजी की कृपा से ही डिग्री प्राप्त हुई थी (अवध की झाँकी, पृ० ५)। इस सम्बन्ध में बनादास जी की निम्नाङ्कित पंक्ति द्रष्टव्य है— 'वारिस मान प्रतापनरायन दासबना अस खाँचत लीके' (दामदुलाई छंद १४)।

इसके पश्चात् 'बनादास' जी का शेष जीवन इसी आश्रम में आराध्य के ध्यान और उनकी लीलाओं के गान में बीता –

बसैं अजोध्या धाम, कहीं नहिं आना जाना ।
एक राम को नाम, और नहिं जान जहाना ।।
कबहुँ ब्रह्मरस मत्त कबहुँ कृत सगुन ध्यानै ।
कबहुँ नाम असमरन कबहुँ बर लीला गानै ।।
याते अपर मुकाम नहिं, निज सम्मति साँची अहै ।
कह 'बनादास' प्रभु निज दिसा देहिं जाहि सो निबंहै ।।

एकान्तसेवी होते हुये भी कठोर तपश्चर्या द्वारा प्राप्त सिद्धियों के कारण धीरे धीरे इनकी ख्याति इतनी बढ़ गई कि अपने समय में ये अयोध्या के मूर्धन्य संत माने जाने लगे –

काल को करतब अतिबल भारी ।
सातपुरी को माथ अवधपुर तहँ प्रभु अधिक प्रभाव पसारी ।।
जोगी जती साधु जन पूजे राजन को सिर पद पर डारी ।
तीरथ धाम समाज सुजन को तहँ सब ऊपर कीन खरारी ।
'दासबना' निज कृत नहि मानत सब महिमा रघुनाथ तुम्हारी ।।

अपने कुल में तो ये ब्रह्म के साक्षात् अवतार रूप में पूजे जाने लगे। बनादास जी के समकालीन, उनके सगोत्रीय कवि विसेसरसिंह का कथन है—

बकारो वासुदेवश्च ना च नारायणो मतः ।
दामोदरो दकारश्च साकाराय नमोस्तु ते ।।
बन्दौं 'बनादास' पद, कुल में कमल प्रकास ।
पित्र सबै भव पार मे, हरिपुर करत नेवास ।।

जीवन के अन्तिम समय में रोगों के आक्रमण से बनादास जी को अपार कष्ट हुआ। एक साथ ही गठिया, शीत ऊर्ध्ववायु और बवासीर के प्रकोप से इनका शरीर जर्जर हो गया। इस दशा में भी इन्होंने रोगमुक्ति के लिए न तो तांत्रिकों एवं पंडितों की शरण ली और न वैद्यों के ही दरवाजे खटखटाये। सभी प्रकार से उपायशून्य होकर ये नामजप में लीन रहे—

मंत्र जंत्र तंत्र जरी बूटी न दवाई जानौं,
बैद द्वार जात न उपाय सब तजे हैं।
साधन न दूसर सपन माहिं जानौं कोई,
करम बचन मन राम नाम भजे हैं ।।

इसी नाम महौषधि का सेवन कर ये माता सीता की कृपा से शीघ्र ही पूर्ण स्वस्थ हो गये—

तन रोग मन रोग भव रोग भूरि भागे,
लागे सूल सत्रु न एकौ बचै जोग है।
लौनासुर माफिक निपात कियो बाँको बीर,
प्रिय रघुबीर हते तिहूँ ताप भोग है ।।
'बनादास' जालिम हुकुम रघुनाथ जू को,
अब आवै लायक न गये सब रोग है।
बख्तर सर्व अङ्ग जङ्ग करि सकै कौन,
दीन दुख दारिद सिया को नियोग है।

शारीरिक व्याधियों का नाश इनके तपोबल और आराध्य की कृपा से हुआ है, इसका प्रचार होने पर लोगों में रामभक्ति के प्रति आकर्षण बढ़ेगा और निंदकों को अपनी करनी पर पश्चाताप होगा, बनादास के लिये यह अपार संतोष की बात थी—

भयो रोग निर्मूल अब, जानि ईस अनुकूल ।
'बनादास' आनन्द अति बिगरो बैठो तूल ।।
बिगरो बैठो तूल भूल मिटिहै सब केरी।
देखिहैं देह निरोग जोग महिमा हिय हेरी ।।
तब निंदा करिहैं कवन राम श्रवन जनु सूल ।
भयो रोग निर्मूल अब जानि ईस अनुकूल ।।

इस प्रसंग पर लिखे गये 'हनुमंतविजय', बजरंगविजय', 'रोगपराजय' आदि ग्रंथों में 'बनादास' जी ने रामदूत हनुमान के द्वारा रोगों का मूलोच्छेद बताया है। अपनी अन्तिम रचना 'रोग पराजय' में इन्होंने उसका समय भाद्र कृष्ण दशमी सं० १९४१ दिया है—

संवत नौ सै सहस है पुनि यकतालिस साल।
सन् बारह सौ बान्बे रोगहिं खायो काल ॥
दूरि भयो सब सूल असित भादौं है दसमी।
भाषत पोढ़ी पैजा सत्ति बातैं हैं कसमी ॥

इसके पश्चात् ये आठ वर्ष तक और जीवित रहे। किन्तु इस बीच इन्होंने किसी ग्रंथ की रचना नहीं की। 'भवहरणकुञ्ज' में ही चैत्र शुक्ल सप्तमी सं० १९४९ को ७१ वर्ष की आयु में इनका साकेतवास हुआ और इस प्रकार साधना के आरम्भ में की गई प्रतिज्ञा पूरी हुई--

है मेरो याही मतो, जौ पुरवैं रघुबीर।
जियौं राम रटि अवध में, मरौं तौ सरजू तीर ॥

—भगवती प्रसाद सिंह

विषय-सूची

❀ बिसमरन-सम्हार ❀

* श्री गुरुचरनकमलेभ्यो नमः *

॥ श्री रामो विजयते ॥

अथ बिसमरन-सम्हार ग्रन्थ लिख्यते ।

दोहा—सन्त गुरू पद बन्दिये, बहुरि जानकी राम ।
सत् चित् घन आनन्द जो, ताको करत प्रनाम ॥ १ ॥
सो सरूप बिसमरन भो, जा बिन लहत न पार ।
'बना दास' बिनती करै, ताको करो सम्हार ॥ २ ॥
प्रकृति केर परपंच सब, फैलि रह्यौ चहुँ ओर ।
दिनमनि द्यौस निहारि जिमि, तिमि आतम भ्यौ भोर ॥३॥
भूल्यौ काल अनादि ते, आतम अपनो रूप ।
हरि गुरु सन्त सरन भये, पावै रूप अनूप ॥ ४ ॥
गुरु से दाता ना कोई, गुरु से बन्धु न आन ।
गुरु से देव ना दूसरे, गावत बेद पुरान ॥ ५ ॥
गुरु बिन भवनिधि ना तरै, जतन करै कोउ कोटि ।
गुरु भक्ती को जानिये, सब दिन सब से मोटि ॥ ६ ॥
गुरु कृपा बिन सुख नहीं, 'बना दास' तिहुँ काल ।
निश्चै जानो गुरु कृपा, ब्रह्मानन्द बहाल ॥ ७ ॥
गुरु दाया अनुभव उदै, राम रूप को लाह ।
'बना दास' श्री गुरु कृपा, रहै न एकौ चाह ॥ ८ ॥
गुरु प्रसाद ते चारि फल, करतल आवत हाल ।
'बना दास' श्री गुरुकृपा ते, मेटत सकल कुचाल ॥ ९ ॥
'बना दास' गुरुकृपा ते, लहै ज्ञान बैराग ।
राम भक्ति अति सुलभ है, गुरु कृपा बड़ भाग ॥१०॥

गुरु-पद-पदुम-पराग की, महिमा है अति भूरि ।
सब साधन की सिद्धि है, देत फंद भव धूरि ॥११॥
गुरु मुख चन्द सरोज से, कछु मन मधुप चकोर ।
निसि बासर सूरति रहै, गुरु मूरति की ओर ॥१२॥
गुरु गुन अगम समुद्र है, कोउ न पावत पार ।
सारद सेस न कहि सकैं, 'बना दास' बुधि बार ॥१३॥
श्रुति पुरान को अगम है, गुरु पद पदुम प्रभाव ।
कबि कोबिद सकुचात सब, 'बना दास' किमि भाव ॥१४॥
तिहुँपुर हेरे ना मिलै, उपमा श्री गुरुदेव ।
'बना दास' गुरु कृपा, ते, जानि सकत कोउ भेव ॥१५॥
सात दीप हेरा भले, सात समुन्द्र थहाय ।
सोधा सात पताल को, सात स्वर्ग सुधि पाय ॥१६॥
गुरु पद पूजा जोग नहिं, ठहरी बस्तु अमोल ।
कहँ सुबरन सुम्मेर गिरि, कहँ घुँगची की तोल ॥१७॥
ह्वै कै दीन पुकारिये, सरन सरन निसिबार ।
त्राहि त्राहि आरत हरन, कछु न जोग सरकार ॥१८॥
रोम रोम रिनिआ सदा, पूजा धूर न दीन ।
निजदिसि ते मन कीजिये चरन कमल जल मीन ॥१९॥
सुक्ख जन्म श्री गुरु दिये, दिये भक्ति बिज्ञान ।
भव बंधन काटे भले, श्री गुरु पुरुष पुरान ॥२०॥
गुरु बिभूति केहि बिधि कहौं, पाये मुख नहिं कोटि।
मन मलीन, एकै बदन, तापै मति अति खोटि ॥२१॥
कर्ता भर्ता भोगता, तुमही सब परकार ।
'बना दास' बलहीन को, बेगि लगाये पार ॥२२॥
कोटि जनम लै पचि मरै, गैल परै नहिं सूझि ।
'बना दास' बिन गुरु कृपा, टिकै न अंतर बूझि ॥२३॥

सिंघ करत गुरु भेंड़िते, बहुरि रंक ते राव।
स्वान ते बाछा करत हैं, ऐसा अगम प्रभाव ॥२४॥
जो नेवछावर कीजिये, ऐसी कोटि शरीर।
तौ श्रीगुरु से उरिन नहिं, जिन मेटे भव पीर ॥२५॥
ब्रह्म गुरू गुरु राम है, गुरु है सकलौ देव।
फेरि न दूसर पूजिये, जब करिये गुरु सेव ॥२६॥
मलयागिरि को त्याग करि, मूरुख खोजत बास।
दूसर साधन देव कस, जब हाजिर गुरु पास ॥२७॥
परतिछ स्वामी छाँड़िकै, मूरति पूजन जाय।
जब पायस भोजन करै, तब नहिं खरी सोहाय ॥२८॥
चहुँ जुग, चहु श्रुति, काल तिहुँ, लोक तीनिहूँ माँहि।
'बना दास' वादे कहैं, गुरु समान हित नाहिं ॥२९॥
कृपा बिना गुरु देव के, सरै न एकौ काम।
'बना दास' सपने नहीं, द्रवैं जानकी राम ॥३०॥
'बना दास' श्री गुरु कृपा, मेटत भाल कुअंक।
लोकहुँ बेद प्रमान है, सेवत सुजन निसंक ॥३१॥
गुरु चरन में सीस दै, करै जो मरजी सोय।
यक उत्तर औ प्रश्न करि, खड़ा बस्तु पर होय ॥३२॥
यक निज मन को लेत है, अवर तजै सब अंग।
तीनि भाँति को होत है, 'बना दास' सत्संग ॥३३॥
दुनियादार सरन भये, श्रवन मंत्र सुनि लीन।
जाको जैसो भाव है, सो तसि भक्ति कीन ॥३४॥
राम एक गुरु एक हैं, चेला सब कोइ होय।
भाव भेद सत्संग में, बस्तु बतावत सोय ॥३५॥
जाको जैसा भाव है, ताको तैसा स्वाद।
खेत कोहू को जात परि, काहू केर अबाद ॥३६॥
कहुँ गुरु जब लायक मिलै, तब पावै गति सोय।
लायक चेला गति लहै, गुरु चाहे तस होय ॥३७॥

लच्छन श्री गुरदेव के, को कहि जावै पार ।
पार लगावत है सोई, जो उतरा संसार ॥३८॥
लच्छन आगे सन्त के, बहुरि करब निरधार ।
सो बिचारि गुरु कीजिये, सेय होय भवपार ॥३९॥
चेला उतरन जोग है, गुरु चाहे तस होय ।
काज आपनो सारिहै, राम रूप गुर सोय ॥४०॥
ताते जस गति सिष्य की, तस विधि करै निषेद ।
जब सरनागत ह्वै गयो, ईस कहै गुर बेद ॥४१॥
गुरु मूरति सब ध्यान में, पूजा मैं गुरु पाय ।
सकल मंत्र मै गुरु बचन, कृपा परम पद आय ॥४२॥
गुरु गरीब नेवाज हैं, गुरू सरनागत पाल ।
निजदिस सदा सम्हारिहै, 'बना दास' बुधिबाल ॥४३॥
गुरु दाता जुग चारि है, चेला सदा भिखारि ।
जो गुरू दिसि इरषा करै, परै सकल विधि हारि ॥४४॥
नारद गुरु धीमर किये, भे भवसागर पार ।
जानि बूझिकै जो करै, सो न परै मझधार ॥४५॥
धनि धनि जग गुरु सूर दुति, बचन मोहनिसि नास ।
अनुभव उपजत सद्य ही, सिषि मन कमल बिगास ॥४६॥
'बना दास' पारस गुरू, अन्तर बड़ो अनूप ।
पारस कनक कुधातु कर, गुरू आपनो रूप ॥४७॥
बादशाह नृप सुर पितर, निज सम करत न कोय ।
अभि अन्तर सबके रहत, मम समता किमि होय ॥४८॥
यदि रुचि श्री गुरदेव में, पुनि दूजे रघुनाथ ।
बरबस अपनो रूप करि, जीवहि करत सनाथ ॥४९॥
यह स्वभाव गुरु-राम को, जीव ब्रह्म करि देत ।
अपर सकल कँगले अहैं, इरषा बस्य अचेत ॥५०॥
जथा नृपति कोउ रंक को, निज सरूप करि लेत ।
तैसे गुरु रघुनाथ जू, जीव ब्रह्म करि देत ॥५१॥

निज सरूप जबहीं लह्यौ, तबहीं पूरन काम।
'बना दास' तहँ एकता, चेला गुरु और राम ॥५२॥
कला कुसल जानत सोई, सुनि अचर्ज सब कोय।
'बना दास' सम्हर परे, एक रूप सब कोय ॥५३॥

इति श्री बिसमरन सम्हार गुरु प्रभाव अंग निरूपन नाम प्रथम विश्राम।

❁

दोहा—अपने-अपने रूप में, परा सबन को भूल।
आन कहे कछु ना बनै, कलि कीने प्रतिकूल ॥१॥
कलि कुचाल कहँ लौ कहौं, किहे धरम बिपरीति।
'बना दास' ब्याकुल जगत, फैली अकथ अनीति ॥ २ ॥
दया न लागत दुष्ट के, कुआँ मिलाई भंग।
मर्म न कोउ कह काहु सन, सबको मन बदरंग ॥ ३ ॥
कलि कुचाल चक्की चलै, दरे जात सब लोग।
'बना दास' हरि की कृपा, बचै कील संजोग ॥ ४ ॥

चौपाई—जीभ लिंग औ राग औ देषा। अरु संकल्प विकल्प बिसेषा ॥
हरख सोक अरु मानपमाना। अस्तुति निन्दा ज्ञान अज्ञाना ॥ ५ ॥
आसा त्रिस्ना जोग बियोगा। हानि लाभ औ दुख सुख भोगा ॥
स्वर्ग नर्क पुनि बूड़ा तरा। धनी निरधनी जनमा मरा ॥ ६ ॥
मात पिता औ पंडित मूरुष। भला बुरा औ स्त्री पूरुष ॥
दाता मँगता रैयत राजा। रीति दिवस औ काज अकाजा ॥ ७ ॥
रूप कुरूप ऊँच अरु नीचा। कंचन काँच, सुखाना सींचा ॥
सीत उस्न पुनि छुधा पिपासा। वस वहुत काहू को नासा ॥ ८ ॥
लोभ मोह अरु काम औ क्रोधा। दूबर-मोट, अबल कोउ जोधा ॥
यहि बिधि चक्की कोटिन चलै। जुग पट भीतर सब जग दलै ॥ ९ ॥
कलियुग पीसन हार कठोरा। नहिं मानै कछु बिनै निहोरा ॥
कृपा राम की कील उबारै। अवर सकल को पीसे मारै ॥१०॥
'बना दास' उबर्यौ तेहि राहे। कृपा जानकी नाथ निबाहे ॥

निज सरूप में ठाव बतायो। ताते परम सान्ति को पायो ॥११॥
द्वैत दुकाल ख्याल सम बीता। रहीं न काहू का भयभीता ॥
आसा नदी मनोरथ नीरा। त्रिस्ना तीव्र भँवर गम्भीरा ॥१२॥
लोभ लहरि सुभ असुभ किनारे। राग देष संगम जनु नारे ॥
सुख इच्छा कहुँ मिलत न थाहा। अरु अभिमान चौंड़ई चाहा ॥१३॥
मोह बाहनी बरनि न जावै। धीर बिबेक बिटप भहरावै ॥
इरषा पंक न उमसन देई। सोच साँप बरबस धरि लेई ॥१४॥
संसै ग्राह ग्रसे बरियारा। मकर महाभय अति बिकरारा ॥
भर्म सूँस अरु कमठ कुतर्का। कपट जोंक जानहु सुठि बर्का ॥१५॥
भेक पखंड सेवार दंभ दल। बहु बासना सो अमित जीव जल ॥
फेना सम निन्दा पर बहुती। कूटि मसखरी संबुक सूती ॥१६॥

दोहा—सोक औ चिन्ता कुंड हैं, जहाँ तहाँ गम्भीर।
'बना दास' जामें परे, कबहुँ न लागै तीर ॥१७॥

चौ०-दस इन्द्री कानन तट भारी। सिंघ बाघ गैंडा करि कारी।
अन्त:कर्न चारि सो जानो। प्रान पहार कठिन करि मानो ॥१८॥
मतसर दर्प दैत दानव गन। कर्म जाल बहु जाति बृक्ष बन।
डाइनि चुरयल क्षुधा पिपासा। निद्रा ठगिनि लिये बनवासा ॥१९॥
जरा ब्याधि पुनि रोग अपारा। बीछी सर्प को बरनै पारा।
काम बराह क्रोध रिछ जानो। मर्कट बिक सुभाव बहुमानो ॥२०॥
ससक सृकाल मृगा वहु जाती। सो चितवृत्ति अनेकन भाँती।
बहरी बाज गीध गति भारी। चीलिह उलूक सो अमिष अहारी ॥२१॥
बहु खग कठिन काल सम नाना। पंच विषय जानहु परमाना।
माया रज़नी अति अँधियारी। कलि कुचाल वंचास बयारी ॥२२॥
दामिनि से संकल्प बिकलपा। दम-दम दमकत थिर नहिं अल्पा।
चवरासी जनु मघा नखत झरि। जम जातना बज्र पाहन परि ॥२३॥
तामें परिगो जीव अबूझा। मारग नाव न बेरा सूझा।
वार-वार बहु करत बिचारा। कवनिउ भाँति न सूझै पारा ॥२४॥

श्रुति औ सास्त्र पुरान अपारा। मनहु काल यक जाल पसारा।
जस छोरै तस बाझस जाई। दिन-दिन अधिक-अधिक अरुझाई ॥२५॥
अति बिसुद्ध गुरु सरनहि आवै। तन मन धन से प्रीति लगावै।
कपट बिहाय अपनपौ देई। मन क्रम बचन सदा पद सेई ॥२६॥
जो कछु गुरु उपदेसै ज्ञाना। सो सब करै सिष्य हरषाना।
गुरु को परमेश्वर करि मानै। मानुष भाव भूलि नहि आनै ॥२७॥
साधन सिद्धि भेद सब पाई। मन क्रम बचन चलै लवलाई।
सपनेहु अवर भरोस न लावैं। ह्वै अनन्य वाही मग धावै ॥२८॥
तव भव नदी पार सो जावै। बहुरौ जगत जनम नहि पावै॥

दोहा—अवरि जतन कोटिन करै, कबहीं लहै न पार।
'बना दास' श्री गुरु कृपा, है विसमरन सम्हार ॥२९॥

चौगला—निति निर आसी मुक्त बिलासी पर बासी नहि कासी।
'दास बना' नाहीं सन्यासी अति ही परम प्रकासी ॥३०॥
रोम रोम से प्रान कढ़ै जब तब सरीर यह छूटै।
प्रति रोवाँ बीछी की पीड़ा बाँस गिरह सम कूटै ॥३१॥
अति ही भारी सुकृत काहु को होइ तौ कम परि जावै।
ना तौ कमी होन माफिक नहि अति दुख तन छिटकावै ॥३२॥
जनमत समय जंत्र जनु जन्ता खींचत अति दुख पाई।
रोम रोम पीड़ा से ब्याकुल इहाँ लोग सब गाई ॥३२॥
मल औ मूत्र रक्त औ पीब के बीच उर्ध गति रेवा।
को तहँ थैली माँहि कसा अति काटहि कृमि बहु भेवा ॥३४॥
ताता तीता खाटा खारा जननी की रुचि भारी।
जो कछु भोजन करत रैन दिन देत देह सब जारी ॥३५॥
अकथनीय दारुन दुख भीतर अमित जनम सुधि आई।
त्राहि त्राहि करि हरिहि पुकारत कृपा करहु रघुराई ॥३६॥
पार करहु यहि दुख सागर से अब निसि बासर भजबै।
बार बार करि पैज पुकारत पल भरि चरन न तजबै ॥३७॥

कंकुर चोट सरिस वै बातें भूलि गई इहाँ आये।
जव से होस सम्हारेहु जग में तव से पाप कमाये ॥३८॥
भव सरिता को दुःख प्रवल अति सो प्रथमहिं कहि आये।
तामें वहे फिरत निसि वासर सपनेहुँ सुख नहिं पाये ॥३९॥
श्रुति पुरान सद्ग्रन्थ अनेकन सास्त्र सकल कहि हारा।
श्रीमुख सन्त गुरु उपदेसत मानि कै भला तुम्हारा ॥४०॥
गादर बैल सरिस ना बेधत तोको चोट अभागी।
अजहुँ भला सबेरा समुझे जाइ सरन हरि लागी ॥४१॥
सकल भाँति से भला होइगो आँखि मूँदि जो धावै।
येहि मारग सपनेहु भय नाहीं कबि कोबिद मुनि गावै ॥४२॥
जो कोइ समय पायकै चूकत ता सम मन्द न कोई।
छूटा तीर हाथ नहिं आवत जानि लेहु सब सोई ॥४३॥

चौ०-बालापन खेलत में बीता। जुवती आइ जुवापन जीता॥
मद्धि बयस में गे बवराई। धरनि धाम धन हेत गँवाई ॥४४॥
जब बरबस आई बिरधाई। तब से चिन्ता अधिक जनाई।
इन्द्री सिथिल दन्त भे भग्ना। दिन प्रति होत सोच में मग्ना ॥४५॥
श्रवण न सुनत नयन नहिं देखा। डोलन लागे सीस बिसेखा।
मल औ मूत्र न जात सम्हारा आँखि ते कीचर मुँह बह लारा॥४६
जो तन धरि कै पाप कमाये। ते तेहि समय चित्त चढ़ि आये।
आगे जम जातना जनावै। चवरासी की डर अति आवै ॥४७॥
निसदिन रहै सोक में डूबा। स्वास स्वास पर अति ही ऊबा।
जिन लगि निज परलोक बिगारा। सो बचनन ते छाती जारा॥४८॥
खैर ख्वाह बहुतो कर बूढ़ा। स्वान से करहिं निरादर मूढ़ा।
खान पान सुख पावै नाहीं। कब मरिहैं सब कहत सदाहीं ॥४९॥

चौगला-मानुष तन गुन ज्ञान खानि है देवन दुर्लभ माना।
सूकर स्वान सृकाल सरिस खर किमि खोवत बवराना ॥५०॥

'दास बना' कर जोरि निहोरत कुसल सरन हरि आये।
फिरि चवरासी परे न छुट्टी बहुरि न बनिहि बनाये ॥५१॥

आजुइ कालिह कहत दिन बीते तिसरेउ पन नगचाना।
अजहूँ मानहु कहा सबन को सिर पर काल तुलाना ॥५२॥

यक दिन लेइहि आइ अचानक तब न चलिहि चतुराई।
तीतर बाज, बिलारी मूसा जिमि बक मछरी खाई ॥५३॥

ज्यौं बिक बकरी को लै भागत गरुल सांप गहि मारा।
ऐसो काल घात करिहै जिमि केहरि हरिन पछारा ॥५४॥

बेगहि सरन होहु रघुबर के भजन करहु दिन राती।
सब दिन सन्त पुकारत आये समव हाथ से जाती ॥५५॥

दोहा—जनम सोइ पुनि जनम नहिं, मरन न मरन बहोरि।
जनम मरन यह कवन है, होते जात करोरि ॥५६॥
जनमिकै जो जनमै नहीं, मरि कै मरै न फेरि।
ताहि प्रलै नहिं सिष्टि है 'बना दास' कह टेरि ॥५७॥
ताही को नर जनम है, अपर तेलि क बैल।
चवरासी कोल्हू फिरैं, लादि चलैं नहिं गैल ॥५८॥
प्रलै जानिये ज्ञान को, और सृष्टि अज्ञान।
वोह माया परपंच है, नाना मत कर गान ॥५९॥
सकल प्रपंच मिटाइकै, श्रुतिउ अन्त कह ज्ञान।
नहिं कछु भया न होइगो, है सो ब्रह्म प्रमान ॥६०॥
नाना भाँति पुरान है, बरनत अमित प्रपंच।
अन्ते सब कोउ ज्ञान कह, ताते जगत न रंच ॥६१॥
'सर्वं खलिदं ब्रह्म' है, बेद बचन परमान।
अज्ञानी के दिष्टि में, जगत छोड़ि निर्बान ॥६२॥
ज्ञान दिष्टि में जग नहीं, अज्ञानी केहि भाँति।
देसकाल दिसि बिदिसि नहिं, कहा दिवस अरु राति ॥६३॥

सदा एक रस ब्रह्म है, दूजा नाहीं कोय ।
अब को कासो का कहै, रहै सान्ति में सोय ॥६४॥
सोवत सान्ति सुषुप्ति महँ, मन बुधि वचन ते पार ।
हम हेरे ते मिलत नहिं, कवन करै निरधार ॥६५॥

इति श्री बिसमरन सम्हार भव अंग बिमोचन नाम द्वितीयो विश्रामः ।

चातक निरूपण अंग

चौगला—श्रुति पुरान संतन को सम्मत भाषी पात न पच्छा ।
कहे जथारथ सब दुख पावै मानै कोउ कोउ अच्छा ॥१॥
राँड़ रूपैया ईंटा चूना इन सबहिन को भच्छा ।
'दास बना' रघुनाथ जानकी करौ हमारी रच्छा ॥२॥
कपट पखंड दंभ दल भारी सबहिन को छलिडारा ।
कलि की कला कहाँ लौ कहिये पावत कोउ न पारा ॥३॥
पढ़ि पढ़ि बेद बहैं सब पंडित अवर को कौन बिचारा ।
'दास बना' मोहि समुझि परा अस उबरिहि नाम उबारा ॥४॥
भेष भूरि सब जग में भारी साधन सार न हेरे ।
सुख के हेत उपाय अनेकन सदा आस के चेरे ॥५॥
जहँ सतसंग भजन रघुबर को जात न वाके नेरे ।
'दास बना' कोऊ जन उबरै उर पेरक के पेरे ॥६॥
दुनिया अन्न बिना मरि जावै धनी भये मठ धारी ।
खाहिं पेट भर करहिं न कष्टा सोवहिं टाँग पसारी ॥७॥
बहु बेवहार माहिं मति माती देहिं साधु को गारी ।
'दास बना' दिन बादि जात नहिं सुमिरत अवध बिहारी ॥८॥
कहन सुनन को साधु कि सेवा निज सेवा करवावैं ।
करैं लोक निर्वाह भली बिधि परमारथ किमि पावैं ॥९॥

सुद्ध बृत्ति बिन स्वाद मिलत नहिं दुनिया बहुत चेतावै ।
अपना चेत करत नहिं कबहीं ताते सुख नहिं आवै ॥१०॥
बेष वनाये अति निवृत्ति को ते प्रबृत्ति को साधैं ।
दोऊ ओर से आगि लागि को तन मन इन्द्री बाँधैं ॥११॥
जे गरीब ते अन्न के दुखिया हरि पद को अवराधैं ।
कोऊ कोऊ रहे भोर नषत से जासु भार हरि काँधैं ॥१२॥
यह बिसमरन सम्हार यही हित निज-निज भूल सम्हारै ।
संसारिन को भूल सिन्धु सम को कहि पावत पारै ॥१३॥
जो सम्हारैं सोई सुख पावै तासे भले बिचारैं ।
'दास बना' उर पेरक भाषत मम गुन दोष नेवारैं ॥१४॥
यह जग भूल सराय सनातन भूलि जात सब कोई ।
'दास बना' भूलत नहिं सोई राम कृपा जब होई ॥१५॥
उर में बैठा करत पेरना फेर परै केहि भाँती ।
धोखेहु कृपा करत जेहि ऊपर तेहि जोगवत दिन राती ॥१६॥
ज्ञान चिराग बारि उर अन्तर अति ही करत उजेरा ।
'दास बना' यक राम नाम है भवसागर का बेरा ॥१७॥
ताको छोड़िअवर मत भटकै सोई अति मतिहीना ।
'दासबना' नहिं पार होय जग अति ही दिन दिन दीना ॥१८॥
विना सुराई साधु पनाहै अति दुख रूप समाना ।
कादर प्रान छाँड़िकै भागत कटि न सकत मैदाना ॥१९॥
सूर मरत उत्साह सहित रन सती जरत अनुरागी ।
'दास बना' सुरलोक सिधारत तिहुँ पुर कीरति जागी ॥२०॥
ऐसेहि ज्ञान विराग भक्ति बिन भेष भाँड़ को स्वाँगी ।
प्रीतिप्रतीति सार नहिं सपने पेट भरहिं जग माँगी ॥२१॥
कोई कोई रघुबर के प्यारे नहीं खेत से टरते ।
सीस उतारि धरैं धरनी पर कतल मोह दल करते ॥२२॥
तिनका सुजस तिहूँ पुर जगमग जनम लाह उन लीना।
'दास बना' श्रीराम नाम में मन कीने जल मीना ॥२३॥

ज्ञान बिराग भक्ति के आकर साध रही नहिं कोई।
जीवन मुक्त भये याही तन दरसन दुर्लभ सोई ॥२४॥
चारि पान के आड़ बिकाता ढोली भर सब जाने।
पीछे भेष निबहता सब दिन जे हरि हाथ बिकाने ॥२५॥
पूजन हेत सबै हरि जन हैं सेवैं लेइ मजूरी।
'दास बना' निस्चै तिनसे है मुक्ति पंथ अति दूरी ॥२६॥
हाथी दांत खान को औरे औ देखन को दूजा।
तैसे महल जमाति बाँधि कै लेहिं भली बिधि पूजा ॥२७॥
राम रंगीले की गति न्यारी वोई मुक्ति के दाता।
'दास बना' रघुनाथ मिला चहै जोरै तिनसे नाता ॥२८॥
पूरन भागि मिलै काहू को तन की तपन नेवारै।
'दास बना' दाया करि जग में आरत जन को तारै ॥२९॥
अति सुख रूप दया के सागर द्वैत दिष्टि जेहि नाहीं।
इन्द्रीजीत अकिंचन अद्भुत जाहि नहीं कछु चाही ॥३०॥
सीतल सान्ति सरल समता रति अतिहि सुह्रिद सबही के।
गूढ़ गम्हीर बचन सति बोलैं दुखी नहीं कबहीं के ॥३१॥
रूप कुरूप ऊँच औ नीचा यह कबहीं न बिचारैं।
सब घट देखत एक आतमा दुतिआ दिष्टि निकारैं ॥३२॥

चौपाई-दुनिया करै सो साधू करै। साधु बेष सो नाहक धरै।
तन मन औ इन्द्री बसि करै। कछु कामना न उर में धरै॥३३॥
राग देष परि हरै बिसेषी। आसा दिष्टि सपन नहिं देषी ॥३४॥

दोहा-तन मन इन्द्री बासना, आसा भै सन्देह।
राग देष गुन दिसि मरै जीवत पावै गेह ॥३५॥
धीरज धरम सम्हारि कै, राम सरन सिर देय।
'बना दास' बदि कै कहैं, सोइ परम पद लेय ॥३६॥

चौगला—इन सबहिन से पार होब जो सोई परम पद होई।
अवर न कतहूँ आना जाना जानि लेहु सब कोई ॥३७॥

दोहा—पोल पाल की बात नहिं, डार फरत कहुँ मुक्ति।
जिअत मरे बिन ना मिलै, करी करोरिन जुक्ति ॥३८॥
मुक्ति कामना जो करै, सो जीवत मरि जाय।
'बना दास' समुझे बिना, नाहक भटका खाय ॥३९॥
राम भक्ति जो कोउ चहै, सोऊ जियत न होय।
जब लै दूजी आसरा, तब लै मिलै न सोय ॥४०॥
ताते दोनौ एक हैं, ज्ञान भक्ति नहिं आन।
मिलै न जीवत मरे बिन, जानत संत सयान ॥४१॥
साधु होय संचै दरबि, सो मरि होवै साँप।
जो स्त्री को सँग करै, नरक रूप सो आप ॥४२॥
जो प्रापति नाहीं अहै, दाम चाम में प्रीति।
तब लगि साधू मानना, 'बना दास' बिपरीति ॥४३॥
लिंग जीभ अति ही प्रबल, तिहुँ पुर किये बेहाल।
'बना दास' जीतै जोई, ताहि कहा कलि काल ॥४४॥
जीभ लिंग जीते नहीं, साधुपना धिरकार।
'बना दास' संसार में, जनमै बारै बार ॥४५॥
जमपुर में सहै जातना, भई फायदा कौन।
'बना दास' दुनिऔ भला, अपने घर पर जौन ॥४६॥
डौल बनाये हंस को, कौल से चूका जाय।
'बना दास' बगुलै भला, परगट मछरी खाय ॥४७॥
चोर स नीका साहु है, इहाँ उहाँ बरियार।
साहु बना चोरी करै, तेहि धृग बारहि बार ॥४८॥
बाहर बहु परदा करै, औ बाँधत मरजाद।
अन्तरजामी राम हैं, यामें कवन संवाद ॥४९॥

जाको गुरु पूरा मिला, ताको पूरा काम ।
'बना दास' केते भये, कामिनि कनक गुलाम ॥५०॥
मान बड़ाई बासना, करैं बिबिध बेंवहार ।
'बना दास' हरि भजन तजि, भूले स्वाद सिंगार ॥५१॥
अपर जीव की को कहै, बूड़त हैं मझधार ।
पण्डित साधू पचि मरैं, तब को पावै पार ॥५२॥
यक बन्धन में जग परा, मरै रैन दिन रोय ।
सो महन्त गल बाँधते, कुसल कहाँ ते होय ॥५३॥
भेष भूरि भगवान को, भेद लहा कोउ एक ।
तिरगुन माया राम की, अटकत ठाँव अनेक ॥५४॥

चौगला—नहिं त्यागी हौं नहीं संग्रही हरि इच्छा परमाना ।
दुखसुख हानिलाभ नहिं जानत अति ही उचटे काना ॥५५॥
भागौं नहि प्रबृत्ति की भै से नहिं निवृत्ति रुचि आना ।
पटका बोझ राम के द्वारे बहु मतवाद न जाना ॥५६॥
ताते संसै रही न कोई सुखी रहैं दिन राती ।
जीते जीत हारेहू जीतब भै नाहीं कोउ भाँती ॥५७॥
बेद पुरान बिबिध मारग तजि राम नाम मति माती ।
'दास बना' सब हीं सो न्यारा नहिं कोउ जाति न पाँती ॥५८॥
जाति जमाति काल के माफिक ताते सब दिन भागै ।
बाधा करै भजन में निसि दिन भव रजनी में जागै ॥५९॥
करम सुभासुभ दोऊ छोड़िकै रामनाम लव लागै ।
'दास बना' स्वारथ परमारथ कबहुँ नहीं तेहि खाँगै ॥६०॥

दोहा—जगत भूल औ आपनी, देखा बे सुम्मार ।
'बना दास' सो बूझिकै, किये नहीं निरधार ॥६१॥
यह बिसमरन सम्हार है, उरमें पेरक राम ।
भूल सम्हारन हेत है, यही ग्रन्थ को काम ॥६२॥

सकल रसन को त्याग कर, राम नाम रस लेय।
लाख बात की बात यह, 'बना दास' कहि देय ।।६३।।

चौपाई-मूड़ मुड़ाये जटा रखाये। सिर पर नाँगे बाँह उठाये।
सब महि को परदच्छिन लावें। बाँधि पेड़ में पाँव झुलावैं ।।६४।।
कोई ठाढ़ रहैं दिन राती। ग्रीषम में तापैं बहु भाँती।
सीत काल जलसाई रहैं। मुख मौनी ह्वै बचन न कहैं ।।६५।।
बरषा सिर जलधारा सहैं। तन बिभूति मृग चर्महि गहैं।
छाँड़हिं अन्न बनहि फलहारी। बिबिध तरह के बनै अचारी ।।६६।।
कोउ ब्रत तीरथ में मन लावें। कोउ जप जोग जज्ञहित ध्यावैं।
पूजा पाठ करें दिन राती। बिद्या बेद पढ़ैं बहु भाँती ।।६७।।
कोउ जग नाना पन्थ चलावैं। बाद बिबाद बहुत बिधि भावै।
दान पुन्न में कोउ रति मानी। कर्मकांड कोउ बहु बिधि जानी ।।६८।।

कोऊ जाइ बन बास लगावै, कोई परबत खोह समावै।
राम नाम बिन यह सब भूला, आतम ज्ञान हरै दुख मूला ।।६९।।

दोहा-श्रुति पुरान सद्ग्रन्थ कहैं, कहते हैं सब सन्त।
भुक्ति मुक्ति अरु भक्ति हित, राम नाम से अन्त ।।७०।।
तन मन इन्द्री बसि नहीं, साधु भये बिनकार।
गटई गगरी बाँधि कै, डूबि मरैं मझधार ।।७१।।
ह्वै साधू रुचि दूसरी, तेहि समुझावै कौन।
हरहँट हाथी बरजना, यहू भूल का भौन ।।७२।।
उपदेसना अजान हित, सो मानत है बैन।
जानि भुलानो ना सुनै, कहा करै दिन रैन ।।७३।।
जानि भुलानो मोर मन, मानै ना कोउ भाँति।
पर मिसु उपदेसा करै, 'बना दास' दिन राति ।।७४।।
सोझा सोझी ना कहै, 'बना दास' डर खाय।
मेरा मन मानी बड़ो, अवरि बिगरि मति जाय ।।७५।।

बेष बनाये साधु को, दिन प्रति चलत अनीति।
'बना दास' मानिहि नहीं, मोहिं परी परतीति ॥७६॥
पीछा पकरे भेष को, सिखवत बारहि बार।
तातें जनि माखै कोई, है मन बड़ो चमार ॥७७॥
मैं नहिं काहू को कहत, देइहि मति कोइ खोरि।
साधु आड़ लै कै कहौं, समुझि जाई मति मोरि ॥७८॥
कहैं तो राजा राम जी, जाको यह संसार।
सुनै चहै कोउ ना सुनै, उनका सब अधिकार ॥७९॥
मोरै मन मानै नहीं, मैं सिखवों केहि आन।
को मिरगा खेदत फिरै, बौरे स्वान समान ॥८०॥
अपनो मन समुझाइये, कहा परी तोहि और।
पेट भरै नाहीं कबहुँ, गये आनमुख कौर ॥८१॥
श्रुति पुरान अरु सन्त मत, त्यागब गहब अनेक।
'बना दास' अब भेष हित, मानहु नाहीं एक ॥८२॥
सहजे मन सूकर सरिस, विषय नरक न अघाय।
भरा सुधा सम ब्रह्म रस, तहाँ नहीं ठहराय ॥८३॥
पानी में बैठो कोई, जिमि आवत उतिराय।
सुमिरन ध्यान समाधि में, त्यों मन को गति आय ॥८४॥
सुई के नाखा में करै, सूरति आठौं जाम।
'बना दास' ते जानिये, राजी रहिहैं राम ॥८५॥
बड़े सूर को काम है, जो मन को बसि कीन।
'बना दास' हमरे मते, तिहुँपुर तासु अधीन ॥८६॥
सर्व इन्द्रिन को दमन करि, मन को करै गुलाम।
जहँ चाहै राखै तहाँ, 'बना दास' सो राम ॥८७॥
परे जोग यह जानिये, मानसमई समाधि।
'बना दास' तब ना रहै, सहजे कोइ उपाधि ॥८८॥

स्वर्ग नर्क अपवर्ग है, सब मन ही को कार।
मनै समाधी ह्वै गया, फेरि कहाँ संसार ।।

❀

मन निरूपण अंग

क०-पीपर को पात कैधों हाथी को कान कैधों,
धुजा को उड़ान कैधों मूड़ गिरगिटान है।
नैनन की पलक मानौ कुंडल की हलक जैसे,
बिजुली की झलक कच्छ सीस को प्रमान है।
दीपक को जोति भूत आगि की उदोति नारि,
नाक को बुलाक फेरे चमकत कृपान है।
'बना दास' ऐसो मन कैसे कोई बसि करै,
पसु कैसी पूंछ मानो दारिद को दान है ।।१।।

सवैया-सास्त्र को को सम्मत लै गुर सेय भले मन लाय करै सतसंगा।
तीव्र बिराग महा अनुराग बिभाग बिहाई रंगै हरि रंगा ।।
ज्ञान प्रकाश बढ़ै अभिअन्तर निर्मल होय मनों जल गंगा।
'दास बना' सब साधन साधि सो सान्ति करै मन की गति भंगा।।२।।

दो०-जग मुरदों का गाँव है, मरे फिरें सब लोग।
समुझाये मानै नहीं, बड़ो कठिन मन रोग ।।३।।
हरि गुरु सन्त कृपा बिना, नहिं कल्यान को ज्ञान।
'बना दास' धावै जगत, बौरे स्वान समान ।।४।।
पिंड बिबिधि ब्रहमंड है, सबमें चेतन एक।
'बना दास' घट घट विषे, होते चरित अनेक ।।५।।

दोहा-पर उपाधि किमि लेत है, नाहक सीस चढ़ाय।
मन मूरुख मानै नहीं, केतिक थके समुझाय ।।६।।
जाको तुम जानत सुनत, तासु कहै गुन दोष।
भमित सिष्टि है ब्रह्म की, ताहि करै सन्तोष ।।७।।

ज्यों सबको नहिं कहत है, त्यौं इनहूँ को त्यागु।
'बना दास' अबिचल सदा, निज सरूप अनुरागु ॥८॥
त्रिस्ना तेरी माय है, त्यागत नहीं बनाय।
'बना दास' मरिकै बहुरि, चुरयल सी लपटाय ॥९॥
जतने घट में जो रुचत, तहँ सो करत चेतन्य।
अपने को का है परी, सो मति है अति धन्य ॥१०॥
होनहार टरिहै नहीं, किमि चिंतत कोउ बात।
'बना दास' अबिचल ह्रिदै, तहौं करत उतपात ॥११॥
माया मन की माय है, औ आसा अरधंग।
जब लग जड़ जीवत रहै, तब लग तजत न संग ॥१२॥
मन तू मानौ प्रेत है, मरि मरि जीवत फेरि।
अब बेबेक की कोल्हु में, तोहि डारिहौं पेरि ॥१३॥
पेरिकै तेल निकारिहौं, जरिहौं ज्ञान की आगि।
'बना दास' बैरी भयो, नहीं बचैगो भागि ॥१४॥
कुसल चाहु तो लीन रहु, अपने सुद्ध सरूप।
याही तेरो सिफति है, तौ फिरि परम अनूप ॥१५॥
तू छाया है ब्रह्म की, अपने ठाँव समाय।
करत कवँडलाचाल जब, कौड़ी को ह्वै जाय ॥१६॥
अब तू झलकी देइ मति, नहीं डारिहौं मारि।
कारज कारन मात्र जे, काम सो लेय सम्हारि ॥१७॥
मनै काल मन कर्म है, मन गुन अरु मन दोष।
मनै स्वर्ग मन नर्क है, मन है जीवन-मोष ॥१८॥
मनै पाप मन पुन्य है, मनै सत्रु मन मीत।
मनै तिया मन पुरुष है, मन निर्भै मन भीत ॥१९॥
मनै ज्ञान मन ध्यान है, मनै जीव मन ब्रह्म।
'बना दास' मन के मिटे, छूटै सरबारह्म ॥२०॥
मन काया दाया मनै, मन माया मन क्रूर।
मन मोटा मन दूबरा, मन कायर मन सूर ॥२१॥

मनै धनी कंगाल मन, मन सुख मन दुख रूप ।
मन पंडित मूरुष मनै, मन को ख्याल अनूप ।।२२।।
मन चंचल मन ही अचल, मनै ऊँच मन नीच ।
मनै साहु मन चोर है, मनै अमर मन मीच ।।२३।।
मन जोगी भोगी मनै, रोगी मन मन दीन ।
मन निरोग मन सोग है, मनै ब्रह्म में लीन ।।२४।।
मन असाधु मन साधु है, मनै खरा मन खोट ।
मन बूड़ा मन ही तरा, मन के माथे खोट ।।२५।।
मन कपूत मन भूत है, मन सपूत मन दूत ।
मन ठग मन जग मन अलग, मनै मिला मन धूत ।।२६।।
मन बिन ब्रह्मसमुद्र सुख, छूटे मन बिस्तार ।
'बना दास' जब मन मिटै, तबै मिटै संसार ।।२७।।
जिनका मन बसि होय गयो, सोई है सुख रूप ।
'बना दास' जिनको मरा, सो है ब्रह्म सरूप ।।२८।।
जब मन ते जिउ रहित है, सोय ब्रह्म तब आप ।
'बना दास' मन सहित जब, जरत तीनिहूँ पाप ।।२९।।
निज ऐगुन ऐनक दिये, अपने नैन के बीच ।
ताते पर ऐगुन लखत है, 'बना दास' मन नीच ।।३०।।
निज धुनि झांई सुनि परत, उहाँ नहीं कछु आन ।
त्यों पर ऐगुन लखत है, 'बना दास' अज्ञान ।।३१।।
जैसे द्रिग के दोष से, युग ससि लखत अकास ।
'बना दास' निज दोष ते, पर ऐगुन परकास ।।३२।।
जब देखै यक आतमा, नहि गुन दोष लखाय ।
'बना दास' तब मन कहाँ, रहै सान्ति सुख पाय ।।३३।।
जो पर ऐगुन ना कहै, तोहि बोलन को थोर ।
श्रुति पुरान बानी बिबिधि, कथन करै मन चोर ।।३४।।
राम जानकी ब्रह्म मै, भाषत बारै बार ।
'बना दास' तापै करत, पर ऐगुन परचार ।।३५।।

अब जनि धोखे लेइ तू, पर औगुन को नाँव ।
'बना दास' गुन ना कहै, यह तजि देइ सुभाव ।।३६।।
छोड़ सबेर सुभाव को, देर न लावै मूढ़ ।
'बना दास' हरदम रहै, ब्रह्मानन्द अरूढ़ ।।३७।।
काँच-भवन प्रतिब्रिम्ब लखि, ज्यों भूँकत है स्वान ।
तिमि तू पर ऐगुन लखत, तजत न मन अज्ञान ।।३८।।
तू ही सब में पूर है, कूर न तजत सुभाव ।
गुन ऐगुन दूनौ तजै, निज सरूप लव लाव ।।३९।।
पुरुष दिष्टि से येक है, प्रकृतिउ नाहिं अनेक ।
सुद्ध स्वरूप सम्हारिकै, त्याग न करै कुटेक ।।४०।।
सब को कारन है मनै, अति ही बड़ी बलाय ।
ताते मन को मारिये, तजि कै सकल उपाय ।।४१।।

दोहा—मनै जिये ते जक्त है, मनै मरे ते मुक्ति ।
'बना दास' मन मारिये, ताते तजि सब जुक्ति ।।४२।।
ज्ञान कसौटी में कसै, मन को नाना भाँति ।
सुद्ध सोन सो होय जब, तब नाहीं भव राति ।।४३।।
मन बैरी को बसि करै, तबै सरै सब काज ।
'बना दास' मन बसि नहीं, तब लगि सकल अकाज ।।४४।।
जे जन मन रुचि पालते, ते हैं मन की जोय ।
आठ पहर परबस रहैं, मुक्ति कहाँ से होय ।।४५।।
जे जन मन को ब्रसि किये, ते हैं मन के मर्द ।
पार भये संसार से, किये मोह दल गर्द ।।४६।।
पढ़े-लिखे सत्संग किय, बूड़न की नहिं दर्द ।
पूछ बिषान से हीन सो, साधु भये जनु बर्द ।।४७।।
जैसे राज महीप को, कोउ रैयत बसि लीन ।
ऐसे आतम ज्ञान बिन, जीव प्रकृति आधीन ।।४८।।

चौरासी जीते नहीं, जे नर तन को पाय।
तिन से सूकर स्वान भल, बिषै करैं औ खायँ ॥४९॥
दंभ देखाई देय जनि, साधुपना सब जाय।
'बना दास' ताते रहै, मूढ़हि दाबे पाय ॥५०॥
कामादिक सब मारिगे, मोह कुटुम्म अपार।
मरा बिबेकउ केर दल, अब नँहि जीवन हार ॥५१॥
मन मालिक दुहुँ सैन कौ, मुरदौ जौ रहि जाय।
'बना दास' अति ही कठिन, सबको लेत जियाय ॥५२॥
ताते मन को रगरिये, डरिये तौ मरि जाय।
को जानै ह्वै प्रेत सो, कबहुँ न लागै आय ॥५३॥
काल मनै लखि परत है, लिये सकल जग जाल।
जाहि मरे कालौ मरै, ताते बड़ो चांडाल ॥५४॥
जाही को मन मरि गयौ, ताहि को पूरा काम।
सबै मरा मन के मरे, मनै सबन ते बाम ॥५५॥
पीपर पात सो छीन भो, दीन दोहाई दीन।
'बना दास' निज रूप में, अब रहिहौं जलमीन ॥५६॥
हर्ष सोक भै भोग रुचि, यह सब मन को धर्म।
मोर तोर मैं जानिये, सारे मन को कर्म ॥५७॥
सतौ असत जे बासना, अरु संकल्प बिकल्प।
तीनिउ गुन को त्याग जब, तब नाहीं मन अल्प ॥५८॥
विषय बासना हिये मँह, आवै नहीं सुभाय।
'बना दास' तब जानिये, अब मन गयौ बिलाय ॥५९॥
जब ईश्वर की भै नहीं, आसा त्रिस्ना जाहि।
बिधि निषेद ते रहित मन, तब जानी मन नाहि ॥६०॥
सब करतब से सुन्य ह्वै, सहजै साधि समाधि।
'बना दास' तब जानिये, अब नाहीं मन ब्याधि ॥६१॥

तिनुका सम तिहुँ पुर गयो, श्रुति की रही न भीति।
ब्रह्मानन्द से घट भरा, गयो मूढ़ मन बीति ॥६२॥
भरो घड़ा भड़कै नहीं, खाली करतो सब्द।
सान्ति मुक्ति जाको मिली, तन भोगै प्रारब्द ॥६३॥
परारब्द को भोगि कै, गिरि जैहै दिन एक।
'बना दास' कासो कहै, संसय गई अनेक ॥६४॥
निःसंसै निरबासना, निर्भै निरहंकार।
निरआसा निर्वैर जे, नित्तिमुक्ति संसार ॥६५॥
बंध मुक्त को भान नहिं, सोई ब्रह्म निर्बान।
यही सान्ति कैवल्य है, परमधाम नहिं आन ॥६६॥

—:—

सुमिरन निरूपण अंग

दोहा—रूप बिसमरनलाभ हित, करु असमरन बिसेषि।
साधन अमित प्रकार जे, ताते परै न देखि ॥१॥
राम नाम सुमिरन सदा, कुहिरा काटन हार।
जोग जज्ञ तप दान ते, होय न कबहीं पार ॥२॥
ब्रत तीरथ औ जम नियम, सारे नखत समान।
'बना दास' निसि तब नसै, जब्र हिअ प्रगटै भान ॥३॥
राम नाम सुमिरन बिना, लहै न आतम ज्ञान।
सास्त्र बेद बिद्या बिबिधि, सारे पढ़े पुरान ॥४॥
खाली पुतरी डोलती, सब ताजिआ समान।
देखि देखि करि भूकते, मानहुँ बौरे स्वान ॥५॥
सबँ में चेतन एक है, भानु मसक परमान।
थावर जंगम ब्रह्म सब, देखै तजि अज्ञान ॥६॥
ह्रिदै मुकुर मुर्चा बिषै, किमि लखि परै सरूप।
नाम मसाला रगरि कै, देखै रूप अनूप ॥७॥

काम क्रोध मद मोह अरु, लोभ मिटावन हेत।
नाम सरिस औषद नहीं, भजु हरदम करि चेत ॥८॥
इन पाँचौं के दोष ते, होइ न जीवन मुक्ति।
तिन के मारन हेत को, नाम छोड़ि नंहि जुक्ति ॥९॥
राम नाम असमरन बिन, होइ न आतम ज्ञान।
ज्ञान बिना नहिं मुक्ति है, उअै जो पच्छिम भान ॥१०॥
पुहुपित बानी बेद की, भूलत बालक बुद्धि।
करम कांड कोटिन करै, लहै न आतम सुद्धि ॥११॥
नाना लोभ देखाइकै, अन्तै भाषत ज्ञान।
पंडित पढ़ि पढ़ि भूलते, सब देहा अभिमान ॥१२॥
सब दिन अभिअन्तर रहै, राम नाम में लीन।
'बना दास' ह्वै जाय तब, निज सरूप जल मीन ॥१३॥
तब्ही कटै उपाधि सब, मोह न आवत नेर।
बरा दीप बिज्ञान को, तब कहँ रहै अँधेर ॥१४॥
परा जाप पूरा परै, तबै सरै सब काम।
पावै जीवन मुक्ति सो, सुखी रहै बसु जाम ॥१५॥
आलस और प्रमाद पुनि, करु निद्रा बरबाद।
'बना दास' तब ही मिलै, राम नाम को स्वाद ॥१६॥
सर्वत्याग कीने बिना, बनै न सुमिरन नाम।
राम रूप तेहि न मिलै, सिद्धि होइ नहिं ज्ञान ॥१७॥
सर्व धर्म को त्याग करि, संग न राखै काहि।
भक्ति ज्ञान बैराग को, स्वाद मिलत है ताहि ॥१८॥
एक दफे ऐसा करै, पीछे इच्छा राम।
जस चाहै तस राखिहै, 'बना दास' बसु जाम ॥१९॥
राग देष ते रहित निति, निरभै औ निःसंग।
निर आसा सन्देह बिन, सकल बासना भंग ॥२०॥

सत्ति बचन संग्रह रहित, बिषय न मानस माहिं।
पराजाप अधिकार तेहि, और से होवत नाहिं ॥२१॥

सो०—मकरी कैसा तार, आठ पहर चौंसठ घरी।
लगा रहै हर बार, 'बना दास' सुमिरन सोई ॥२२॥
जैसे जल औ मीन, ऐसे लगन लगी रहै।
कस न होय भवछीन, 'बना दास' लहि ब्रह्म सुख ॥२३॥
ताहि बैषरी जाप, इन लच्छन करि रहित जो।
सो होवै निःपाप, 'बना दास' करि नेम रट ॥२४॥

दोहा—राम नाम कौ जाप जौ, कोई तरह ते होय।
'बना दास' सन्देह नहिं, डारत कल्मष धोय ॥२५॥
सतगुर बचन प्रमान करि, सब साधन को त्यागि।
'बना दास' नामहिं रटै, दहै न भव की आगि ॥२६॥
छन भरि सान्ति न होत है, जिनका अन्तःकर्न।
'बना दास' ते लेत हैं, बृथा मौन को पर्न ॥२७॥
परा जाप पायौ नहीं, मन इन्द्री नहिं सान्ति।
तौन मौन दुख भौन है, मिटै न उर की भ्रान्ति ॥२८॥
चनक चारि फल चारि हू, तनक तीनिहू लोक।
'बना दास' जपिकै भये, जे बल नाम बिसोक ॥२९॥
सात स्वर्ग सहता लगो, नहिं अपवर्ग कि आस।
'बना दास' जाके ह्रिदै, राम जानकी बास ॥३०॥
छीर सिन्धु बैकुण्ठ पुनि, सर्व लोक गोलोक।
जाना अवध प्रभाव जिन, फिर न सोक परलोक ॥३१॥
राम नाम को छोड़ि कै, करै अवर की जाप।
'बना दास' हमरे मते, बकै अनाप सनाप ॥३२॥
बिसद राम जस छोड़िकै, करै अवर जस गान।
'बना दास' भूला सोई, है मुख भेक समान ॥३३॥

जब लगि मन निज हाथ नहिं, तन इन्द्री आसक्ति ।
'बना दास' तब लै नहीं, होय राम की भक्ति ।।३४।।
कोटिन करै उपाय कोउ, तजिकै धर्म अधर्म ।
सकल तजै रामहि भजै, तिन्है न लागत कर्म ।।३५।।
कोटि जनम लगि ना बचै, बिन भोगे निज कर्म ।
जामै भूजा बीज नहि, करै अमित पैसर्म ।।३६।।
नाम जपत प्रगटै हिदै, सहजे अनुभव ज्ञान ।
बिधि निषेद फिरि को करै, रहै सरूप समान ।।३७।।
पैसा पेट औ पापिनी, तिया मया वा जक्त ।
तिपटा हेंगा से बचै, 'बना दास' हरि भक्त ।।३८।।
जपे से अजपा होत है, अजपा से बिन जाप ।
'बना दास' तब ही मिटै, जगत रजनि त्रैताप ।।३९।।
चारि ठाँव हैं भजन के, बानी चारि प्रमान ।
परा पस्यंती मद्धिमा, अवर बैषरी जान ।।४०।।
नाम रगर उर अति करै, हरदम परै न बीच ।
तब हिय लोचन खुलत है, गै चवरासी नीच ।।४१।।

सोरठा–सतौ असत दल मारि, राम नाम समसेर लै ।
ज्ञान दीप को बारि, सैन सान्ति परिजंक पर ।।४२।।
ब्रह्मानन्द समान, उपमा दूजो है नहीं ।
को केहि करै बखान, राम नाम जपि जन लहै ।।४३।।

स०–नाम भजे सम भक्ति न दूसरि, सन्त औ बेद पुरानहु गावैं ।
नामहि ते लहै ज्ञान बिराग बिज्ञान औ सान्ति सबै कोउ आवैं ।।
नाम समान न साधन सिद्धि यहै तन में मनवांछित पावैं ।
'दास बना' फल चारि की चाह बिहाइ बिसेषि परे पद जावैं ।।४४।।
आदिहु नामहि मद्धिहु नामहि अन्तहु नामहि नामहि नामहि ।
पूरब रामहि पच्छिम रामहि उत्तर रामहि दक्खिन रामहि ।।

आगेउ रामहि पाछेहु रामहि ऊँचेहु रामहि नीचेहु रामहि ।
'दास बना' सब रामहिरामहि राम बिना कोउ आव न कामहि ॥४५॥

ज्ञानउ राम बिरागउ रामहि भग्तिउ रामहि सांतिउ रामहि ।
जोगउ रामहि भोगउ रामहि रोगउ राम बियोगउ रामहि ॥
तत्त्वहु राम अतत्त्वहु रामहि प्रानहु रामहि भोरेऊ सामहि ।
जीवहु रामहि ब्रह्महु रामहि 'दास बना' अस को नहि जामहि ॥४६॥

स्वर्गउ राम पवर्गउ रामहि मद्धिहु राम पतालहु रामहि ।
सिष्टिउ राम असिष्टिउ रामहि विसिष्टउ राम समिष्टिउ रामहि ॥
निष्ठिउ रामहि दिष्टिउ रामहि लोकउ रामहि बेदउ रामहि ।
सास्त्रहु राम पुरानहु रामहि 'दास बना' सब रामहि रामहि ॥४७॥

आजहु रामहि काल्हिउ रामहि परसों रामहि नरसों रामहि ।
बर्षउ रामहि मासहु रामहि रातिउ रामहि द्यौसहु रामहि ॥
कालहु रामहि कर्मउ रामहि भूतउ राम भविष्यहु रामहि ।
जुक्तिउ रामहि भुक्तिउ रामहि मुक्तिउ रामहि उक्तिउ रामहि ॥४८॥

सुक्खउ रामहि दुक्खउ रामहि सत्रहु रामहि मित्रहु रामहि ।
जोगउ रामहि क्षेमहु रामहि बामहु रामहि सूधहु रामहि ॥
नेरउ रामहि दूरिउ रामहि देरउ राम सबेरउ रामहि ।
कर्त्तउ राम अकर्त्तउ रामहि बर्तउ रामहि तीर्थहु रामहि ॥४९॥

स्वादहु राम कुस्वादहु रामहि रूपउ राम कुरूपउ रामहि ।
इन्द्रिउ रामहि गोचर रामहि कारउ रामहि गोरउ रामहि ॥
रातहु रामहि पीतहु रामहि सेतउ रामहि हरितउ रामहि ।
बर्नउ राम अबर्नउ रामहि सून्यउ रामहि थूलउ रामहि ॥५०॥

मंत्रउ रामहि तंत्रउ रामहि जंत्रउ रामहि अंत्रउ रामहि ।
मद्धिहु रामहि बाहिहु रामहि काजउ राम अकाजउ रामहि ॥

छाजउ राम अलाजउ रामहि साजउ राम कुसाजउ रामहि
सोमउ रामहि सूरउ रामहि 'दास बना' सब रामहि रामहि ॥५१॥

बिचार निरूपण अंग

दोहा—प्रापति माफिक पाँच हैं, 'बना दास' करु प्रीति।
अवध रमायन सन्त गुरु, करिये नाम प्रतीति ॥ १ ॥
राग देष भै बासना, आसा त्रिस्ना खोरि।
'बना दास' ताते रह्यौ, सिय रघुबीर निहोरि ॥ २ ॥
नहि त्यागी नहि संग्रही, राम नाम से काम।
रहे भरोसे राम के, 'बना दास' बसु जाम ॥ ३ ॥
काल करम माया प्रबल, गुन सुभाव ताजि देहिं।
सब साधन को त्यागि जे, राम नाम लै लेहिं ॥ ४ ॥
काठ माहि घुन लगत जब, सार नाहि रहि जाय।
तिमि देहाअभिमान को, सुमिरन देत मिटाय ॥ ५ ॥
जो कुछ परै सो सब सहै, रहै मृतक की भाँति।
जगत बिघन केतौ करै, टरै नहीं दिन राति ॥ ६ ॥
कोउ बहु सेवकाई करै, कोउ करै उपहास।
साधू बूझि बिचारि कै, सब में रहै उदास ॥ ७ ॥
साधू सब में सम रहै, कम नहि परै सेवाय।
समता देस अनेक है, कहै कहाँ लै गाय ॥ ८ ॥
दुइ आखर दुइ पवन है, पुरवाई पछियाव।
प्रकृति निहार उड़ावते, कतहु न पावत ठाँव ॥ ९ ॥

आतम भान प्रकट करैं, सहजे सुद्ध प्रकास।
'बना दास' भूले नहीं, फेरि कहूँ भव पास ॥ १० ॥

चौ०-बिन बिश्वास नास भै सबकी आस होत नहिं पूरी।
दास कहावत खास राम कै सकै न भव भै तूरी ॥११॥
बिन सन्तोष मोष किमि ह्वै है दोष न देखै अपना।
उपदेसै कोउ राम भजब जब तब करैं कोटि कलपना ॥१२॥
धीरज बिना धवल सुख नाहीं ह्रिदै कमल हरि राजै।
धावत फिरत दसौ दिसि भरमित नाहक करत अकाजै ॥१३॥
'दास बना' बिन किये मसक्कति भेष गया है माटी।
निज निज बृत्ति सराहत सब कोइ अन्तर छलकी टाटी ॥१४॥

दोहा-जंत्र मंत्र दिच्छा न दे, नहीं रसायन आस।
अनिमादिक सिद्धिहि तजैं, पर घर करैं निवास ॥१५॥
बूटी जरी को खोज नहिं, पारा औ हरतार।
'बना दास' मारैं नहीं, सकल बिघन के द्वार ॥१६॥
आसिरवाद न श्राप कहुँ, जग रुचि पालै नाहिं।
उद्दिम आन न भजन तजि, पर दुख नहिं मन माँहि ॥१७॥
मारन मोहन बसि करन, इनमें नहिं बहि जाय।
जनम मरन को दुख समुझि, सदा रहै भै खाय ॥१८॥
नासमान जग निति लखै, चवरासी को दुक्ख।
अरु जमपुर की जातना, पल भरि कबहुँ न सुक्ख ॥१९॥
हँसी मसखरी सँग सभा, बालक सँग तिय त्याग।
'बना दास' सपने बिषे, नहिं जुवती अनुराग ॥२०॥
नाच गान अरु जान के, निकट न कबहुँ जाय।
जती धरम नासक सकल, ताते दूरि पराय ॥२१॥
बात अवर की अवर से धोखेहु कहिये नाहिं।
साधु ह्रिदै सामुद्र सम, बचन न तहाँ समाहिं ॥२२॥

द्वैत दिष्टि को फेरि सब, एक दिष्टि से जाय।
'बना दास' ताते सदा, रहै सरूप समाय ॥२३॥
जब उपजै अनुराग दृढ़, तब उखरै जग मूल।
'दास बना' बैराग जब, जारि देय जिमि तूल ॥२४॥
दोहा—जब हीं आवै ज्ञान डर, तब हीं द्वैत नसाय।
'बना दास' होवै सुखी, सान्ति-सुधा को पाय ॥२५॥
जूझि रहै जियतै जोई, सूझि परै तिहुँ लोक।
बूझि परै अनुभव बिमल दूरि होय भव सोक ॥२६॥
कोऊ बात कौ असमरन, आवै ना उर माँहि।
'बना दास' काटै तुरत सुमति सराही ताहि ॥२७॥
रहै अजान समान नित, निज गुन प्रगटै नाहिं।
सुकृत करै सो ना कहै, परचारे प्रगटाहि ॥२८॥
बिन अनुभव भव ना मिटै, करै कोटि उपचार।
सकल त्याग करि नाम रटु, उपजै सुद्ध बिचार ॥२९॥
जब लगि मिटै न बासना, तब लगि कटै न भुक्ति।
'बना दास' कहँ मुक्ति है, करै करोरिन जुक्ति ॥३०॥
जनि काहू में दोष लषु, यह तेरो है पाप।
ज्ञान दिष्टि को त्यागि कै, बकै अनाप सनाप ॥३१॥
बोध सफाई ह्वै गयौ, अजहुँ स्वभाव न जाय।
'बना दास' पीछे पर्‌यो, ताते मन बच काय ॥३२॥
कहन सुनन गुन दोष को, संग बड़ो है रोग।
संगे बिषे असंग रहु, ताते करु यह जोग ॥३३॥
काल करम बसि होत है, संगति जोग कुजोग।
ताते निस्चै कीजिये, परारब्द का भोग ॥३४॥
रहित बासना जे भये, रहते निरब्यवहार।
सहित बासना जे रहैं, उद्दिम बहुत प्रकार ॥३५॥

ज्ञानी भोगै प्रारबद, जरै असुभ सुभ सर्वं ।
अज्ञानी जो कछु करैं, बँधे जात तेहि गर्व ॥३६॥
अज्ञानी बसि आस के, ज्ञानी सदा निरास ।
'बना दास' नहि आस गै, कहा राम के दास ॥३७॥
तन मन धन अरु धरम को, अभिमानी सब कोय ।
एक बार दे राम को, रहुसुख सागर सोय ॥३८॥
जब लगि ऐसा ना करै, तब लगि सरै न काम ।
राम मिलन अति दूरि है, नेर नहीं पर धाम ॥३९॥
हाकिम आवत देस पर, करत जुलुम अति जोर ।
हुकुम बैठिगो देस में, फिर कोउ करत न सोर ॥४०॥
तन मन इन्द्री बासना, कतल करै यक बार ।
'बना दास' हाकिम सुघर, साधुन में सरदार ॥४१॥
जबलगि जितै सुभाव नहिं, कादर चालिस सेर ।
बनि कै बैठा सिद्ध ह्वै, कोटि कोस का फेर ॥४२॥
गुन सुभाव जब लै लगे, लहै न परमानन्द ।
आस बासना जहाँ लगि, बना काल का फन्द ॥४३॥
आपन ऐगुन आप ही, जौ न निरूपन कीन ।
'बना दास' सो साधु है, हिअ कपार दृग हीन ॥४४॥
निज अवगुन काटै नहीं, अवरहि सिखवत ज्ञान ।
पर ऐगुन बरनत फिरत, करत मूरि में हान ॥४५॥
भारी होत बिबेक जब, तब हिअ माँहि समात ।
फिरि बाहेर देखै कवन, अन्तर को कढ़ि जात ॥४६॥
दोष कहै मुख पर कहै, पीछे गुनहि बखान ।
'बना दास' कारन परे, तबौ ऐब की हान ॥४७॥
सब साधन को साधि कै, सिद्ध होय सर्वंग ।
'बना दास' हमरे मते, तबौं न करै कुसंग ॥४८॥

निन्दा अस्तुति ना करै, अरु मानै ना ताहि।
प्रस्न बिना उत्तर नहीं, दुख सुख कहै न काहि ॥४९॥
मनछूटन पावै नहीं, सदा ब्रह्म में लीन।
सब जग देखै ब्रह्म मैं, राम देष ते हीन ॥५०॥
तन अनित्त जड़ जानिये, केवल नर्क सरूप।
हम चेतन परब्रह्म हैं, सुखमय परम अनूप ॥५१॥
तन को दुख मानै नहीं, सुख इच्छा न उपाय।
'बना दास' यहि भूल ते, ज्ञान नष्ट ह्वै जाय ॥५२॥
आस बासना त्याग कर, इन्द्रिन का ब्यापार।
सैन सान्ति परिजंक पर, सहै दुन्द संसार ॥५३॥
अन्तःकर्न परे रहै, सो जन जीवन मुक्त।
भोग करै प्रारब्द को, त्यागि देइ सब जुक्त ॥५४॥
श्रुप के भूले होत यह, जीतै भूल सुभाव।
पला न पकरै कबहुँ कोउ, आपु सदा सुख पाव ॥५५॥
मरन-बुद्धि नाहीं मिटी, सरन भये फल कौन।
'बना दास' धिक साधुता, गयो न आवा गौन ॥५६॥
अति कराल बल काल को, करै सकल जग दौन।
'बना दास' कालहि भषै, साधु कहावै तौन ॥५७॥
कियौ कलेवा काल को, 'बना दास' बल नाम।
साधन सेष नहीं रह्यौ, ब्रह्मानन्द मुकाम ॥५८॥
निज गुन जो परगट करैं, पर ऐगुन परचार।
पर गुन जो मुख पर कहै, यह अबिबेक अपार ॥५९॥
प्रकृति करै परपंच सब, होइ सो मानै नाहि।
'अहं ब्रह्म' हिय जब फुरत, सकल जरत या माहि ॥६०॥
आतम सदा अकर्त्ता, कछू लगत नहि ताहि।
जाने बिना सरूप के, मानि लेत मन माहि ॥६१॥

हौं नहि कियौ करौं नहीं, करियौं नहि कोउ काल ।
बिधि निषेद मो मन नहीं, ब्रह्मानन्द बहाल ॥६२॥
ठकुर सोहाती ना कहै, सन्त गुरू कोउ काल ।
'बना दास' दुख मानते, जो केवल बुधि बाल ॥६३॥
कड़ा बचन कल्यान हित, मधुर होत दुख दानि ।
सुनत बिबेकी ताहि ते, अति कठोर सुख मानि ॥६४॥
बिगरी बात सुधारते, यह सज्जन की रीति ।
'बना दास' जस गावतो, श्रुति पुरान अरु नीति ॥६५॥
परमारथ मारग विषे, मान प्रतिष्ठा काल ।
ताते सब दिन भागते, जे काटत जग जाल ॥६६॥
'बना दास' या जगत में, नहिं देखै गुन दोष ।
हरि माया को ख्याल सब, सो जन जीवन मोष ॥६७॥
एक बुद्धि आये बिना, लहै न अन्तर सुद्धि ।
ताकी करत उपाय नहिं, बाहर ठानत जुद्धि ॥६८॥
मन तोहि बहु समझावते, नहिं देखै गुन दोष ।
निज स्वभाव जबही तजै, तब ही जीवन मोष ॥६९॥

चौ०—सब्दसपरसा रूप रस गंधा पाँचौ बिषय मिटावै ।
ताते तीता मीठा खारा खाट कबहुँ न पावै ॥
बासी भोजन बहुत काल को ताके निकट न आवै ।
'दास बना' तबही निज आतम भव के पार पठावै ॥७०॥
भूख हेत दे तन को भाड़ा स्वाद कुस्वाद विसारी ।
देखी देखा चलै न कबहीं जामें होवै हारी ॥
मन रुचि जोगवत गये बहुत दिन अवतेहि डारु पछारी ।
'दास बना' करु सातुकि भोजन जीभ स्वाद को जारी ॥७१॥
तोहि उपदेस हेत नहिं दूजा आपनि श्रेय बिचारै ।
रहै असँग यकान्त हमेसा सकल बासना जारै ॥

बाहर भीतर के सब संगी निज निज काज सँवारै।
'दास बना' अब परै न गाफिल सहज सरूप सम्हारै ॥७२॥
रसना इन्द्री सब ते भारी है सबहिन की नानी।
धोखी धोखा निबही अब लौं उमिरिउ आय बुढ़ानी॥
अति सूक्षम याकी गति देखा परै नहीं पहिचानी।
'दास बना' जौ सब मरि जावै यह नित होय जवानी ॥७३॥
जाके मरै सबै मरि जावै ताको कहा न करिये।
जौ बहु बिधि से करै दीनता तबहूँ तासों डरिये॥
बैरी को बल बढ़ै न पावै तेहि काबू में करिये।
'दास बना' यह राजनीति है समै पायकै मरिये ॥७४॥

दोहा—देह निबाह ते अधिक, इच्छा करै सो क्रूर।
'बना दास' नाहक भया, साधु पाप को मूर ॥७५॥
तीनि लोक को देत है, दीनानाथ दयाल।
'बना दास' परतीति बिन, भेष भया कंगाल ॥७६॥
परारब्द अति प्रबल है, दुख सुख लह सब कोय।
'बना दास' भोजन निती, कबहुँ प्रतीति न होय ॥७७॥
ताते भटकत भेष सब, भे कौड़ी के मोल।
नहिं भरोस नहिं प्रारबद, घर घर नाहक डोल ॥७८॥
राम हेत मरि जाय जौ, नहिं कौनेउ पुर रोक।
चढ़ि कादरता मूड़ पर, खोय देय परलोक ॥७९॥
रजोगुनी घर जाइकै, करत बड़ाई मूढ़।
ताते मरना भला है, होत न कोइ आरूढ़ ॥८०॥
भले को अनभल होत है, अनभल को भल कीन।
यहकुचालकलि कालकी, उलटिपलटिसबदीन ॥८१॥
जे भारी हैं भजन में, तिन तन किया न होय।
दाँत पीस कर मींजता, मनहुँ गया घर खोय ॥८२॥

राज मिला संसार हित, संतन कारन नाहिं।
जौ कुचाल कबहू चलैं, मुँह-मुँह मारे जाहिं ॥८३॥
सो बिचारि बोलै नहीं, चितव अनैसी डीठि।
साधु दिमाक सदै बड़ो, दै बैठे तेहि पीठि ॥८४॥
जब लगि उपजै ज्ञान नहिं, तबलगि कर्म न जाय।
'बना दास' जब रबि प्रकट, रजनी कहाँ समाय ॥८५॥

चौ०—उतरायन दछिनायन दोऊ कासी मग क्रमनासा।
बूड़ब तरब जियब औ मरना छूटि गई सब आसा ॥८६॥
चाहै अब ही छूटि जाय तन चाहे रहै चिरकाला।
वाको भान होत कछु नाहीं ब्रह्मानन्द बहाला ॥८७॥

दोहा—सुपच भवन वा गंग तट, वा ब्राह्मन स्थान।
चहै देह छूटै तहाँ, भलो बुरो नहिं ज्ञान ॥८८॥
चाहै मृत्यु अकाल की, ब्याधि रोग बसि होय।
चाहै साधि समाधि को, हरष सोक ना कोय ॥८९॥
ज्ञान भयौ तब जग गयौ, रह्यौ आप ही आप।
श्रुति पुरान मुनि संत मत, ताको पुन्नि न पाप ॥९०॥
मैं ईश्वर दूसर नहीं, नहीं सकल करतार।
फुरै हृदै निति ब्रह्म हम, तबै जाय संसार ॥९१॥
तन तब लगि प्रारब्ध है, आगे को कछु नाहिं।
सुख दुख मानपमान सम, मगन ब्रह्म-सुख माँहि ॥९२॥

❀ गुनवृत्ति निरूपण अंग ❀

चौपाई-सत गुन से जागरनो होई । रजगुन सयन लहै सब कोई ।
तम गुन बृत्ति सुषोपति जानो । सब पर साबित मरन समानो ॥१॥
गुनातीत सो तुरिआ कहिये । जाके मिले परम पद लहिये ।
जब लगि तीनिउ गुन लपटानो । तब लगि जीवहि सोवत जानो ॥२॥
जो कछु कहै सुनै औ देखै । जो कछु करै समान बिसेषै ।
जनमै मरै औ बूड़ै तरै । नाना बिधि पुरुषारथ करै ॥३॥
सो सब सपने कर बेवहारा । जब जागो नहि देह सम्हारा ।
हिंसा असुचि करै पुनि चोरी । जाचकता अरु अमित ठगोरी ॥४॥
आलस अरु प्रमाद पुनि दीना । बहु सोइब औ उद्दिम हीना ।
सोक मोह संसै भै क्रोधा । बहु गिलानि कलपना न बोधा ॥५॥
कलह कुचाली कुत्सित कर्मा । नहिं बिबेक कछु धर्म अधर्मा ।
निस दिन लालच लोभ अधीना । सकल भाँति पुरुषारथ खीना ॥६॥

दो०- श्रुति पुरान तीरथ बरत, जानै दान न जज्ञ ।
नहि भूलेहु परलोक सुधि, तम गुन है अति अज्ञ ॥७॥
नाना तापन करि तपत, मन न लहै बिश्राम ।
तम गुन की उत्पत्ति जेहि, भले बिधाता बाम ॥८॥

चौ०-अब रजगुन को करौं बिभागा । पहिचाने बिन बनत न त्यागा ।
त्रिस्ना राग बृद्धि अति भारी । तिहुँ पुर सुख मन इच्छा धारी॥९॥
बहु उद्दिम जग सुख हित करहीं । दान यज्ञ करि स्वर्ग बिचरहीं ।
ब्रत तीरथ तप जो कछु करहीं। सुख हित ह्रिदै कामना धरहीं ॥१०॥
सुरसेवा करि इहै मनावैं । जाते सुख संपति बहु पावैं ।
बिषय भोग करि त्रिप्त न होई । इन्द्री सबल दिनौं दिन जोई ॥११॥
जा बिधि पावक में घृत परै । सो दिन हूँ दिन अधिकै बरै ।
मान बड़ाई में रुचि भारी । निसि दिन दबि चाह अधिकारी ॥१२॥
जिमि जिमि मिलै चाह अधिकारी । जनु बड़वानल सोखै पानी ।
सेवक सखा तुरै अरु हाथी । जोरैं बहुत संग औ साथी ॥१३॥

अमित बासना बरनि न जाई। जिमि बरखा महँ जिउ अधिकाई।
कामिनि कनक स्वाद सिंगारा। दिन प्रति अति प्रानहु ते प्यारा॥१४॥
सत्रुन ते जै चहैं सदाई। धरनि धाम हित करैं लराई।
जंत्र मंत्र कृत्तिया चलावैं। सौ सौ जतन हिदै ठहरावैं॥१५॥
धन हित अति प्रिय प्रान गँवावै। अधरम करैं अमित धन पावैं।
तन सुख सोइ परम पद जानै। इन्द्री सकल सबल नहि मानैं॥१६॥
गुरु साधु ब्राह्मन जो सेवैं। सब से माँगि कामना लेवैं।
सुत बनिता सँग निस दिन मोहैं। ज्यों नट के सँग मरकट सोहैं॥१७॥

दोहा— मेरे सम जग और को, सूर सुपूत सुजान।
सेवक सखा महत्तु जग, इस्त्री सुत धनवान॥१८॥
मेरी ऐसी बाम नहिं, मैं सुन्दर मति मोर।
मेरे सम तिहु लोक को, इमि रजगुन को जोर॥१९॥
येते मेरे शत्रु हैं, इतने डारे मारि।
इतने को मरिहौं सही, रन के बीच पछारि॥२०॥
येते मम सेवक सखा, येतो है मम जोर।
चलैं निहारत चाँह निज, दोउ कर मोछ मरोर॥२१॥
जिमि गूलरि को भुनगवा, ताको नहीं बिचार।
आयौ बान्दर काल जब, खात न लागी बार॥२२॥

चौ०—कहीं सतोगुन की प्रभुताई। दुहुं ते उज्जल अति सुखदाई।
गुर सुर पितर बिप्र रिषि सेवैं। अधरम ऊपर चित न देवैं॥२३॥
निज सम मानैं निज सनबंधी। खान पान में मति नहिं अंधी।
बेद पुरान बिचार सदाई। तजि निषेद बिधि प्रीति बढ़ाई॥२४॥
सपन सराथ लखैं संसारा। धरनि धाम सुत नहिं हमारा।
करैं सदा परलोक बिचारा। बनिता कुटुम न करैं पियारा॥२५॥
कोलल बचन बिचारिकै लोलैं। धरि बिबेक धरम नहिं डोलैं।
चरन राम तीरथ चलि जाहीं। सतसंगति में प्रीति सदाहीं॥२६॥

हरि की कथा प्रान से प्यारी । सब दिन सब को भला बिचारी ।।
जप तप जज्ञ जोग ब्रत दाना । जम अरु नियम अनेक बिधाना ।।२७।।
पढ़बो बिद्या बेद पुराना । सास्त्र बिचार भली बिधि जाना ।।
संझा पूजा सौच स्नाना । पाठ नेम संयम ब्रिधि नाना ।।२८।।
ठाकुर को मंदिर बनवावैं । अति सुन्दर प्रतिमा पधरावैं ।।
जन्म महोत्सव पर्वन माहीं । अति उछाह सरधा मन माहीं ।।२९।।
हरि भग्तन को सब बिधि सेवैं । तन मन धन तिनही को देवैं ।।
सुर मंदिर बहु बाग बनावैं । बापी कूप तलाब खनावैं ।।३०।।
हित करि लावैं हरि फुलवारी । जो लागै सन्तन को प्यारी ।।
दीनन ऊपर दाया राखैं । बचन अन्निथा भूलि न भाखैं ।।३१।।
मन बच कर्म करैं उपकारा । हरि का सुमिरन प्रान अधारा ।।

दोहा–सतो गुनी सेवन सरै, 'बना दास' सत देव ।
रजगुन तमगुन रीति जो, ताकी करै न सेव ।।३२।।
साखा उपसाखा अमित, त्रैगुन केरि बिभूति ।
मुख्खि मुख्खि ताते कहब, 'बना दास' सबकूति ।।३३।।
तीनिउ गुन का त्याग जे, गुनातीत तेहि नाम ।
'बना दास' तीनिउ मिटै, तब पावै परधाम ।।३४।।
तीनिउ गुन जब लै रहै, भूला तब लै सार ।
'बना दास' त्रैगुन रहित, सो बिसमरन सम्हार ।।३५।।
सतोगुनी करता जे हैं, करैं सकामी कर्म ।
'वना दास' सुख के लिये, होवैं रज गुन धर्म ।।३६।।
करै तवन निःकाम ह्वै, हरिहि समर्पै सर्व ।
सो बंधन ते छूटई, बँधै न गुन के गर्व ।।३७।।
मीठ तीत खारा खटा, जरा उस्न कौ बार ।
अति पुष्टता प्रमाद कर, सो रजगुन आहार ।।३८।।

बासी जूठ द्रुगन्ध जुत, सरा भया बहु बार ।
हिंसा जुत दातब्य बिन, सो तम गुन आहार ।।३९।।
निरहिंसक असमिध सुचि, हरू उस्न नहि सीत ।
पथ्य मधुर स्वधरम सहित, सतोगुनी की प्रीत ।।४०।।
और अहार न और को, रुचि नहिपुनि प्रतिकूल ।
'बना दास' तन मन बिषे, उपजत नाहक सूल ।।४१।।

काल निरूपण अंग

पाहन सेत समुद्र पर, सोन कि लंका खाक ।
म्रकट भालु दैतन दले, देखउ काल दिमाक ।।१।।
काल धरम ब्यापै नहीं, जापर राम सहाय ।
काल जाल ते लेत हैं, सदा जनहि निबुकाय ।।२।।
चौगला-सीतल अगिनि भई प्रहलादहि जल नहि सकत डुबाई ।
काक भुसुंडि काल नहिं ब्यापत राम कृपा अधिकाई ।।३।।
दोहा—काल बुद्धि बिपरीत किय, मुनि गर डारे साँप ।
नृपति परीक्षित धरम धुर, देखहु काल प्रताप ।।४।।
सोन की लंका जरि गई, भवन बिभीषन नाहिं ।
होत राम अनुकूल जेहि, काल न ब्यापत ताहि ।।५।।
कालइ बिधि करवावतौ, देखो नाना भाँति ।
पुनि निषेद सोई करै, अचरज कही न जाति ।।६।।
कहँ-कुंभज कहँ सिन्धु ह्वै, सोखत लगी न बार ।
काल होत बिपरीत जब, तिनुका मनहु पहार ।।७।।
काल गाल के बीच में, बसा तीनिहू लोक ।
'बना दास' चाबे जबै, कोउ न सकै करि रोक ।।८।।

काल बनायो बृच्छ जग, चाहत कियो आहार।
बहुरि बिचारेउ आप ही, कालिह को बिना अधार ॥९॥
रहन दियो अस जानिकै, दिन प्रति को फल खाब।
फलिहै यह बिरछा नितै, ताते नहीं भुखाब ॥१०॥
जब चाहैं तब लेहिंगे, यक दिन सकलो खाय।
'बनादास' गति काल की, दुस्तर ना कहि जाय ॥११॥
काल भयानक देह लै जब लै है तन बुद्धि।
'बना दास' तब लै नहीं, मिटै काल भै सुद्धि ॥१२॥
सुद्ध आतमा ज्ञान जब, कटा काल का जाल।
'बना दास' दूजो कहा, ब्रह्मानन्द बहाल ॥१३॥
पल्कहि से संख्या भई, गई कल्प परजन्त।
आदि मद्धि नहि काल को, जामैं सबको अन्त ॥१४॥
काल पाय के होत है, गर्भाधान बिधान।
काल पाय कै जन्म है, जानत सकल जहान ॥१५॥
काल पायकै बाल भे, कालै पाय कुमार।
काल पायकै तरुन भे, काल जुवा अधिकार ॥१६॥
काल पायकै होत है, मान और अपमान।
सुख दुख कालै पायकै, ब्याधि रोग अधिकान ॥१७॥
काल पायकै जरा है, मौत काल ही माहिं।
सब कुछ भीतर कालकै काल बिलग कछु नाहिं ॥१८॥
काल पाय चवरासी, काल पाय जम डंड।
कालै भीतर लखि परत, 'बनादास' ब्रह्मांड ॥१९॥
काल पायकै बंध है, काल पायकै मुक्ति।
काल पायकै होत है, स्वर्गउ की सब भुक्ति ॥२०॥
काल पायकै सिष्टि भै, पालन कालै पाय।
काल पायकै प्रलै है, काल जान नहिं जाय ॥२१॥

'बना दास' गति काल की, कठिन देखाई देय ।
सब कछु भीतर काल के, काल खाय सब लेय ।।२२।।
काल पायंक रबि ससिहि, राहु ग्रसत है आय ।
काल पाय ब्रह्मौ मरे, चलै न कोइ उपाय ।।२३।।
अति भै भारी काल की, को अस जो न डेराय ।
'बना दास' कोइ सन्त जन, जीति काल बल जाय ।।२४।।
काल कर्म नहि सन्त में, गुन सुभाव ते पार ।
अवर बचै नहि काल सो, सबकै करै अहार ।।२५।।
साधु सरूप में है नहीं, संका तीनिउ काल ।
'बना दास' देखे कछुक, मन नहि होत बहाल ।।२६।।
कालै बसिकै होत है, जोग बियोग सहाय ।
काल पाय ब्रन राम गे, सिया सहित अरु भाय ।।२७।।
काल पाय नृप तन तजे, भरत किये तप राज ।
कालै भीतर में भयौ, रावन सकल अकाज ।।२८।।
कहा किये नहिं सिव सती, काल पाय बिधि मोह ।
काल पाय बलिभद्रजू, किये सूत को द्रोह ।।२९।।
काल पाय सनकादि दिय, द्वारपाल को श्राप ।
लखे मोहनी रूप को, काल पाय सिव आप ।।३०।।
काल पाय के लेत है, ईश्वर भी अवतार ।
काल पाय कै करत है, लीला बिबिध प्रकार ।।३१।।
काल भंयानक अति बली, सबकी भँड़ई कीन ।
सब हित काल सरूप हरि, जथा जोग फल दीन ।।३२।।
काल बली सब काल में, होत नहीं कछु कीन ।
ताको भै नहिं काल की, राम नाम जल मीन ।।३३।।

याही लगि साधन सबै, कटै काल का जाल।
'दास बना' निर्भय भयो, ब्रह्मानन्द बहाल ।।३४।।
इति श्री बिसमरन-सम्हार काल अंग निरूपनं नाम अष्टमो विश्रामः।

*

मतवाद उपराम निरूपण अंग

दोहा–पातंजलि जोगहि कहत, मीमांसा कह कर्म।
तत्तु निरूपन सांषि कर, न्याय तर्क को धर्म ।।१।।
कालवाद बैसेषिक, केवल ज्ञान बेदन्त।
'बना दास' हमरे मते, सकल परे मत सन्त ।।२।।
कर्म तर्क अति तुच्छ है, जोगहु ते नहि मुच्छ।
काल वाद का माल है, अन्ते तत्तु न कुच्छ ।।३।।
सबका अन्त बेदान्त है, बेदहु का परिनाम।
'बना दास' बिन सन्त मत, कोऊ न कवनेहु काम ।।४।।
चारि वाकि चहुँ बेद कह, श्रुति में सकल प्रपंच।
'बना दास' पढ़ि पढ़ि मरै, पार न पावै रंच ।।५।।
बहैं अठारह ओर को, अष्टादसो पुरान।
'बना दास' सत्संग बिन, लगै न कहूँ ठेकान ।।६।।
चौदह बिद्या चातुरी, सो पातुरि को कर्म।
धर्म सास्त्र पुनि कहत है, नाना बिधि के धर्म ।।७।।
नौका नौ ब्याकर्न है, पचै मरै बसु जाम।
उतरन हेत समुद्र हित, सो पंडित को काम ।।८।।
पढ़ै लिखै समुझै सकल, बूड़ै मिलै न थाह।
'बना दास' बिन सन्त मत, कतहूँ नहीं निबाह ।।९।।
सतसंगति में ना परै, करै कोटि उपचार।
'बना दास' वादे कहैं, बूड़ि मरै मझधार ।।१०।।

ताते प्रीति प्रतीति करि, दिढ़ ह्वै करु सतसंग ।
पावै सब के बोध को, रँगै राम के रंग ।।११।।
सन्त अनन्त सरूप है, को पावै कहि पार ।
जो ना होते सन्त जन, जरि जातो संसार ।।१२।।
संतै दाता मुक्ति के, संतै केवल राम ।
'बना दास सतसंग बिन, सरै नहीं कछु काम ।।१३।।
सन्त गुरू कहैं राम को, राम गुरू कहैं सन्त ।
'बना दास' तिहु एक है, कोउ कोउ पावत अन्त ।।१४।।
मान बड़ाई कामना, कपट काल को जाल ।
ताही ते लखि परत नहि, सब कोउ फिरत बेहाल ।।१५।।
बिना सुराई साधुता, भई भाँड़ की स्वाँग ।
पढ़ै लिखै समुझै सकल, मानौं खाये भाँग ।।१६।।
जे ते घट तेती बिरति, अचरज कहा न जाय ।
चारै अन्तःकर्न हैं, पाँच तत्तु की काय ।।१७।।
जोई पिंड ब्रह्मांड सोइ, रह अपने में ठहरि ।
सैन सान्ति परिजंक पर, परहित उठै न लहरि ।।१८।।
द्वैत दिष्टि प्रतिकूल है, एकै सुख को मूल ।
देखै केवल ब्रह्म जब, नहि कहु अर्ज न तूल ।।१९।।
चारिउ अन्तःकर्न के, संग आतमा खराब ।
जैसे नीच प्रसंग ते, ब्राह्मन पिया सराब ।।२०।।
परे भये पर ब्रह्म है, वोरे रहे ते जीव ।
सकल बेद बेदान्त को, यह सम्मत है सींव ।।२१।।
अँभिअन्तर में जब फुरै, तबही आतम तत्तु ।
ताको फुरना मानिये, मिटिगै जगत परत्तु ।।२२।।
सोइ प्रापति परधाम है, आतम स्वयं बिहार ।
जीव बुद्धि की सुद्धि गै, तहाँ कहाँ संसार ।।२३।।

आधी साखी में लिखै, चहै करोरिन ग्रंथ।
'बना दास' यक आतमा, सब सन्तन को पंथ ॥२४॥
अति सूछम ते सूक्ष्म है, सकल जतन तेहि लागि।
यही निसानी मिलन की, जागी अनुभव आगि ॥२५॥
लोक, बेद-ब्यवहार को, जारि कीन सब राख।
सो निमकौरी खाय किमि, भवन भरा जे दाख ॥२६॥
सिन्धु को उपमा सिन्धु है, गगन को उपमा गग्न।
ब्रह्मानन्द समान जो, रहै तहाँ निति मग्न ॥२७॥
धरनि धाम के कारने, पुरुषारथ को त्यागु।
भोजन वस्त्र सरीर सुख, हित कबहीं मत माँगु ॥२८॥
भक्ति ज्ञान बैराग है, साधन बिबिध प्रकार।
भजन हेत को कीजिये, पुरुषारथ अधिकार ॥२९॥
मन इन्द्री निग्रह निती, पुरुषारथ है सार।
जीतै आसा बासना, 'बना दास' निसि बार ॥३०॥
'बना दास' मत सन्त को, यह परमारथ सार।
सरनागति सिर दीजिये, हरि बल उर आधार ॥३१॥
तन स्वारथ संसार के, ओर मृतक की भाँति।
'बना दास' हित भजन के, जीवत है दिन राति ॥३२॥
साधु बिबेक अगाध है, सब दिन सिन्धु समान।
डूबि मरै दुनिआ दवरि, लागत नहीं ठेकान ॥३३॥

दोहा—जाको अनुभव ज्ञान भो, सो न बहै मतवाद।
खायौ मोहन भोग जो, क्या लहसुन का स्वाद ॥३४॥
सरनागत पुरुषारथ, भक्ति ज्ञान यक आहि।
साधु मते में एक हैं, सास्त्र मते में नाहिं ॥३५॥
सुख सेज्या सोवत परे, कोटि घसीटे कोय।
'बना दास' तिमि जानिकै, मतवादी किमि होय ॥३६॥

सैव साक्त सिउ सक्ति भज, कोउ गनेस कोउ सूर ।
'बना दास' बिन हरि भजे, परिहि न कबहीं पूर ॥३७॥
अमित भाँति के पन्थ जग, बहु उपासना नाम ।
जैनी नास्तिक बोध मत, लेइ बाज को खाम ॥३८॥
सब से भारी सन्त मत, अन्त न पावै कोय ।
'बना दास' सन्तैं कृपा, लाभ कोहू को होय ॥३९॥
होय सन्त सो सद्य ही, लागै तनिक न देर ।
'बना दास' जिमि दीप ते, दीपक बरत सबेर ॥४०॥
श्रुति पुरान षटसास्त्र के, मतवादी कम ज्ञान ।
चौंतिस अक्षर फेर में, भूंकैं स्वान समान ॥४१॥
सार किनारे सन्त जन, और परे तकरार ।
'बना दास' तकरार में, कोऊ लहत न पार ॥४२॥
माला सम सब संत मत, तामें एक सुमेर ।
'बना दास' गुरु कृपाते, मिटा करोरिन फेर ॥४३॥
है सबको मत सार यह, सिष होवै गुरु रूप ।
जासु भाव दिढ़ जहाँ पर, ह्वै है रूप अनूप ॥४४॥
अच्छर सोइ अनूप है, नि:अच्छर करि देय ।
'बना दास' झगरा मिटै, बिसद सांति सुखलेय ॥४५॥
श्रुति पुरान अरु सास्त्र जे, बँधा सकल को हद्द ।
बहु बिद्या अरु ब्याकरण, सन्त मतो अनहद्द ॥४६॥
लोकमतो अरु श्रुतिमतो, सन्त मतो है तीनि ।
सबते भारी सन्त मत, जाकी मति अति झीनि ॥४७॥
दोउ मत मल के सहित हैं, मैं निजमति दिढ़ कीन ।
सत्ति संकलप राखि उर, बिसद संत मत लीन ॥४८॥
जामें हार न जीति है, नहीं पच्छ नहिं पात ।
जामें मान अपमान नहिं, अनुभव सुख सरसात ॥४९॥

है बेदै मे भेद बहु; लहै खेद सहि नाहि।
जब ही सतसंगति करै, तबही पावै ताहि ॥५०॥
लोकउ बेद अथाह है, होत नहीं निरवाह।
'बना दास' सतसंग में, परा सो पावा थाह ॥५१॥
लोक बेद मत मेरु सम, को तेहि सकै उठाय।
'बना दास' मत सन्त में, दोऊ जात समाय ॥५२॥
रहे सुमेर समान जे, ताकी मिळत न धूरि।
भव बंधन कोउ ना सकै, बिन सत संगति तूरि ॥५३॥
भै संसै दोऊ मिटै, सत्संगति को पाय।
लोक बेद परपंच को, सहजे देत मिटाय ॥५४॥
चहुँ जुग चहुँ श्रुति लोक तिहुँ, कोउ न दिखाई देत।
पायो सुद्ध सरूप को, सन्त मतो अति सेत ॥५५॥
अनुभव सुद्ध उदोह जब, कोउ मन नहिं ठहरात।
'बना दास' ऋतु के समै, तरु पाता झरि जात ॥५६॥
कानन मृग सम सब मते, सरै कहाँ लौं काज।
बन में कोउ रहि जात नहिं, जब आवै मृगराज ॥५७॥
सन्त मतो ताते प्रबल, काहू की न पोसाति।
सब मत वाले जानिये, मतवाले की भाँति ॥५८॥
येक धाम यक आतमा, येक ठाम यक टेक।
येकै साधन येक सिधि, येक दिष्टि न अनेक ॥५९॥
एक भरोसा एक बल, एक आस बिस्वास।
एकै गति एकै भगति, एकै सुमति प्रकास ॥६०॥
येक भेष यक टेक है, एक ध्यान यक ज्ञान।
एकै तिय पिय एक है, गुरुपद एक प्रमान ॥६१॥
एक जोग यक क्षेम है, एक नेम परधान।
एक एक सब एक हैं, एक ब्रह्म निर्बान ॥६२॥

यकै आसन अरु वृत्ति यक, यक अहार सुख सार ।
काल कवर करि लेत है, सब ही को यक बार ॥६३॥
एक गये बचि संत जन, काल जाल को फारि ।
यक निस्चै उर धारिकै, एकै मन को मारि ॥६४॥

तत्व निरूपण अंग

दोहा—प्रकृति पुरुष औ कालते, सकल जगत को ख्याल ।
'बना दास' ताते रहै, ब्रह्मानन्द बहाल ॥१॥

चौपाई—पाँच तत्तु कै सकल पसारा । सो अस्थूल सरीर बिचारा ।
तामें इन्द्री दस परकारा । मन बुधि चित्त और हंकारा ॥२॥
पंचप्रान मिलि सूक्ष्म सरीरा । उनके संग लहै भव पीरा ॥
अरु आतम परमातम दोई । सखा रूप दूजा नहिं कोई ॥३॥
छब्बिस तत्तु कीन परमाना । तामें चौबिस को जड़जाना ॥
जीवातम परमातम दोई । ताको भेद सुनहु सब कोई ॥४॥
यहसरीर जड़ बिटप समाना । दुइ खग सोचे तन परमाना ॥
तामें एक तरुहि मन लायौ । ताही कारन जीव कहायौ ॥५॥
देह बिटप कोसुख फल खावै । ताते जनम मरन को पावै ॥
परमातमा सोय सुखरासी । साखी मात्र रहै अबिनासी ॥६॥
सुख फल खाब तजै जिउ जबहीं । आतम परमातम यक तबहीं॥
रूप बिसमरन को यह कारन। सुख इच्छा सोई भव डारन ॥७॥
तातै सुख इच्छा परिहरिये। काहे जनमि जनमि जग मरिये ॥
जब लगि सुख इच्छा नहिं त्यागै। तबलगि भव भै पलक न भागै॥८॥
सुख इच्छा अरु हंकारा । इनही को जानहु संसारा ॥
दुइ को बोझ धरे सिर जोई । कोटि-जनम भव पार न होई ॥९॥

ताते सुख इच्छा को त्यागी । निसि दिन एक ब्रह्म अनुरागी ।
अन्तः करन बिसेषि मिटावे । तबहीं भव के पारहि जावें ॥१०॥
राम रूप जबही जिउ पावे । तबही उर की इच्छा जावे ।
ब्रह्म रूप मिलि होवे एका । तब नाहीं भव दुख अनेका ॥११॥
महासान्ति सुख सिन्धु समावे । बहुरो जगत जनम नहि पावे ॥
जब निज कुसलन आपु बिचरिहै । तब को काज आपनो करिहै॥१२॥
दोहा—तत्तु बिना नहि गति लहै, तत्तु न पावै कोय ।
'बना दास' पावै सोई, कृपा राम की होय ॥१३॥
एक ब्रह्म निस्चै भयो, तत्तु कहावै सोय ।
सो हौं ही नहि दूसरो, अवरि तत्तु सब खोय ॥१४॥
चौ०—ब्रह्माकार दिष्टि भै जबहीं । भव को मूल गयो जरि तबहीं ॥
भूजा बिया न जामै हारा । ब्रह्माकार भयो संसारा ॥१५॥
ब्रह्माकार सकल जग देखै । आपुहि सदा ब्रह्म करि लेखै ॥
तन मन इन्द्री तजहि बिकारा । तबहीं पावै सान्ति अपारा ॥१६॥
अन्तःकर्न थके सब कोई । सान्ति सराहि सकै किमि सोई ॥
जाको उपमा तिहु पुर नाहीं । सोइ अपवर्ग रूप तन माहीं ॥१७॥
जग को सब प्रपंच दहि जावै । अब कैवल्य कहाँ से आवै ॥
सोइ सायुज्य मुक्ति श्रुति गावै । ज्ञान बिना कोउ ताहि न पावै॥१८॥
जामें कहूँ न आना जाना । पायेउ अबिचल अजब ठेकाना ॥
ताहि हेत साधन है सारा । ज्ञान पाइ फिर सबसे न्यारा ॥१९॥
तब फिरि साधन होवै नाहीं । जिमि रुज गये न औषद खाहीं ॥
तिमि संसार रोग जब गयौ । सांतिहि पाइ सुखी सो भयौ ॥२०॥
लोक बेद बिधि जानै नाहीं । डूबा रहै सिन्धु-सुख माहीं ॥
तब फिरि बिधन न आवहि नेरे । इन्द्रीदेव भये सब चेरे ॥२१॥
गुनातीत गति गूढ़ नेवासा । कटिगो सकल काल का पासा ॥
ब्रह्म जीव को रह्यो न भेदा । जाको जानि सकत नहि बेदा ॥२२॥

तासु सरूप अवर को गावै । सोइ जानै जो कोई पावै ॥

दोहा—इमि भव तरिबो कठिन है, तरै कोटि में एक ।
हरि गुरु सन्त कृपा करै, उपजै बिमल बिबेक ॥२३॥
पूरब सुकृत सहाय कर, यहि तन जन्म प्रजन्त ।
करै मसक्कति तरन हित, तब होवै भव अन्त ॥२४॥
संत सूरवाँ सहस बिधि, करिकै जतन अनेक ।
'दास बना सांतिहि लहै, कोटिन मद्धे एक ॥२५॥

-: साधुता निरूपण प्रसंग :-

दोहा—नौ रस केर बिभाग यह, प्रथम जानु सिंगार ।
'बना दास' दूजे बहुरि, करिहौ स्वपं बिचार ॥१॥
करुना तीसर जानिये, चौथा रौद्र प्रमान ।
पंचम कहिये बीर रस, छठौ बिभत्स बखान ॥२॥
सतयें जान भयानक, अठवाँ अद्भुत होय ।
नवयें कहिये सान्त रस, जा सम अवर न कोय ॥३॥
बहुरौ कहिये पाँच रस, दास सख्य शृंङ्गार ।
अरु बातसल्य प्रमान है, सान्ति सकल सरदार ॥४॥
चारिउ साधन सान्ति के, जोइ जोइ सिधि होय ।
सोइ सोइ आवै सन्ति में, संसै नाहीं कोय ॥५॥
ताते आदर कीन है, सदा सान्त रस सन्त ।
'बना-दास' हौं हूँ कहत, जो है सबके अन्त ॥६॥
आठ अंग जे जोग के, ताको करत बखान ।
प्रथमै जम दूजे नियम, आसन दिढ़ परमान ॥७॥
चौथे प्राणायाम है, पंचम प्रत्याहार ।
छठयें कहिये ध्यान को, सात धारना सार ॥८॥

दोहा—अठवाँ अंग समाधि है, 'बना दास' सो सिद्धि।
बहुरौ करित बिभाग है, जम औ नियम की बृद्धि ॥९॥
द्वादस जम परमान है, ऐसा तासु बिचार।
सत्य बचन हिंसा रहित, अरु अस्तेय है सार ॥१०॥
संग बिबर्जित नित रहै, सब पर दाया दिष्टि।
'बना दास' पुनि चाहिये, लज्जा में अति निष्ठ ॥११॥
मौन आसतिक थिर कही, ब्रह्मचार को जान।
'बना दास' पुनि है छमा, अरु अभीर परमान ॥१२॥
अब कहिये बिधि नियम की, सदा सौच मति लीन।
धर्म को अति ही आदरै, रहै कपट ते हीन ॥१३॥
जप तप हरि पूजा अतिथ, तीर्थ अटन गुरु सेव।
अति दिढ़ता सन्तोष में, पर उपकार की टेव ॥१४॥
'बना दास' होमहि करै, नियम द्वादसौ येह।
धारन करै निबृत्ति जन, नहि यामें सन्देह ॥१५॥
नवसुत जानौ भक्ति के, सोऊ हैं नव अंग।
'बना दास' अब कहत हैं, ताहू को परसंग ॥१६॥
श्रवन कीरतन असमरन, पद सेवन परमान।
अर्चन बन्दन दास्य सख, आतम निबेदन जान ॥१७॥
निष्ठा बुद्धि जो ईस में, सो कहिये सम अंग।
सुद्ध होय इन्द्री जितै, सो है दम परसंग ॥१८॥
कोटि भाँति कोउ देइ दुख, सो मानै दुख नाहिं।
सकल सहैं वैसै रहै, छमा कहत हैं ताहि ॥१९॥
कामिन्द्री रसना प्रबल, चंचल रहैं सदाय।
सकल जगत हैरान किय, कछु नहिं चलै उपाय ॥२०॥
इन दूनौ को बस करै, रस अबला को त्यागि।
ताही को धीरज कही, 'बना दास' बड़ भागि ॥२१॥

दोहा—द्रोह तजै सब जीव को, याते दान न आन ।
सकल भोग की रुचि तजै, तप नहिं ताहि समान ॥२२॥
सूर न कोई ताहि सम, जो जन जितै सुभाव ।
सत्य नहीं कछु ताहि सम, सब में हरि को भाव ॥२३॥
जो असंग सब कर्म से, ता सम सौच न कोय ।
जो कर्मन का फल तजै, त्याग बड़ो है सोय ॥२४॥
सोई है अति इष्ट धन, परम ईस को धर्मं ।
'बना दास' भासै नहीं, भूले दूसर मर्मं ॥२५॥
जज्ञ रूप श्री राम हैं, अवर न दूजा कोय ।
ताके ज्ञानहि देइ जो, सोई दच्छिना होय ॥२६॥
प्राणायाम सो बल नहीं, जासे मन बसि होय ।
भागि न हरि ऐस्वर्ज सम, जो कोउ पावत सोय ॥२७॥
राम भक्ति सम लाभ नहिं, गावत बेद पुरान ।
'बना दास' ताते बिमुख, पशु बिन पूँछि बिषान ॥२८॥
भेद मिटै जाते सकल, सो बिद्या परमानु ।
'बना दास' ताते रहित, सकल अबिद्या जानु ॥२९॥
जो लज्जा उर मानिकै, भूलि न करै अकर्म ।
'बना दास' संतत यही, है लज्जा को धर्म ॥३०॥
निःकिंचन निसपृहा सदा, नहीं लोभ कोउ अंग ।
'बना दास' दिढ़ जानिये, सोइ सुभाव सरबंग ॥३१॥
दुख सुख से अतीत जे, सोई है सुखमूल ।
अपर सकल सुख जहाँ लगि, 'बना दास' प्रतिकूल ॥३२॥
बिषय की इच्छा जहाँ लगि, सोइ जानौ दुख खानि ।
'बना दास' सम्पन्य गुन, ताहि आढ्य करि मानि ॥३३॥
बंध मुक्ति की जुक्ति जो, जाननहार बिसेखि ।
'बना दास' बुध कहत हैं, ताको पंडित लेखि ॥३४॥

दोहा—देह-गेह अपनो कहै, जग मति अति अभिमान ।
धन सुत दारा में बँधे, ते मूरुष नहिं आन ॥३५॥
जा बिधि रामहि पाइये, सोई जानहु पंथ ।
अरु प्रबृत्ति है जहाँ लगि, सो सब जानु कुपंथ ॥३६॥
संतोषी सीतल ह्रिदै, सातिक चित्त सब काल ।
सबही के नित सुह्लद है, सोई स्वर्ग बहाल ॥३७॥
अति तामसी है जो कछू, 'बना दास' सो नर्क ।
श्रुति पुरान सज्जन कहै, यामें नाहीं फर्क ॥३८॥
बन्धु एक सतगुर अहै, बैरी हैं सब कोय ।
जाते जग बंधन छुटै, जानि लेव सब सोय ॥३९॥
रामरूप है सत गुरू, अवर न दूजा कोय ।
निज सरूप को ज्ञान लहि, जीव पार भव होय ॥४०॥
मानुष तन को ग्रह कही, ग्रही होत जेहि लागि ।
त्रिस्नावन्त दरिद्र सोई, जाकी बड़ी अभागि ॥४१॥
जाकी इन्द्री सबल सब, क्रिपिन कहावै सोय ।
सपनेहु ताको सुख नहीं, गया जनम सब खोय ॥४२॥
बिषय रहित ईस्वर सोई, बिषय सहित सो जीव ।
'बना दास' दिढ़ जानिये, सब मत को यह सीव ॥४३॥
ब्रिधि निषेद लच्छन सकल, जानहि परम सयान ।
अवर जानि कैसे सकै, मृग जल देखि लोभान ॥४४॥
बिधि निषेद जल लै गहै, ऊँच नीच को भेद ।
'बना दास' दिढ़ मानिये, तब लै सकल निषेद ॥४५॥
बिधि निषेद की दिष्टि जो, सो जानिय निषेद ।
बिधि निषेद दूनो परे, सो बिधि जाहि न भेद ॥४६॥
पसु मानुष मानै सही, जे बिधि और निषेद ।
पंडित को भय कछु नहीं, जो बिधि बाँधी बेद ॥४७॥

दोहा–ताते सब कछु रूप हरि, दूजी दिष्टि निकारु ।
'बना दास' उर सान्त है, हरदम ब्रह्म बिचारु ॥४८॥
जाग्रत को बिभु जोग है, स्वप्न बिराग प्रमान ।
है सुषुप्ति को ज्ञान बिभु, तुरिया को बिज्ञान ॥४९॥
जाग्रत जिउ नैनन रहै, बिस्व कहावै सोय ।
सपने में कंठै बसै, तेजस नाम सो होय ॥५०॥
ह्रिदै बिलीन सुषोपति, तुरिआ परा प्रमान ।
'बना दास' तहँ स्वतः उठ, 'अहं ब्रह्म' निर्बान ॥५१॥

क०–'प्रज्ञानमानन्दं' ब्रह्म, रिग्बेद को प्रमान
'अहं ब्रह्म अस्मि' जजुर करत बखान है ।
'तत्वमसी' इति सामबेद कहै जानो जन
'अहं ब्रह्मस्मि' अथर्वन को ज्ञान है ॥
चारि बेद भेद एक बाक्य बोलैं चारि मुख
चौंकत अनारी अर्थ जानत सयान है ।
'बना दास' मृषा मत बाद में परे केते
यक ब्रह्म जाने बिना सबै हैरान है ॥५२॥

दोहा–सब्र प्रकार जाना चाही, बिबिधि साधुत अंग ।
ग्रहन जोग सो राखिये, त्यागन त्याग प्रसंग ॥५३॥
समय पायकै ग्रहन है, समय पाय सोइ त्याग ।
रुज में औषद खात सब, नहिं निरोग अनुराग ॥५४॥
जनम मरन के दुःख जे, ते नित करैं बिचार ।
काल के हाथ कमान है, पलभरि नहिं अतिबार ॥५५॥
तत्तु बिचार सो ज्ञान है, 'बना दास' नहिं आन ।
बंध मुक्त को भान नहिं, सो कहिये बिज्ञान ॥५६॥
लीन बृत्ति नित ब्रह्म में, कर्म सुभासुभ छीन ।
'बना दास' पल बिलग नहिं, जैसे जल औ मीन ॥५७॥

दोहा—ब्रह्म जीव दोनों मिले, नीर छीर यकमाहिं ।
'बना दास' फिरि बिलग नहिं, सान्ति कहत हैं ताहि ।।५८।।

सान्ति मुक्ति सबके परे, उपमा दूजी नाहिं ।
परा भक्ति सो जानिये, नहिं संसै या माहिं ।।५९।।

तीनिउ पुर की कामना, रिधि सिधि तिरिन समान ।
राग न तनहू के बिषे, सो बिराग परमान ।।६०।।

बिना बोध कै साधुता, जानहु लोध समान ।
गोड़ा करै कुदारि हिय, सदा रहै हैरान ।।६१।।

सब साधन की सीस मनि, हरि की भक्ति अनूप ।
'बना दास' पुनि तासु फल, पाइब सहज सरूप ।।६२।।

'बना दास, उदिम रहित, नित ही देह निबाह ।
आस बासना ते रहित, सब का सिंधु अथाह ।।६३।।

तन, मन, इन्द्री सान्ति जब, तब सुख कहा न जाय ।
'बना दास' बुधि बचन पर, जानै जो ठहराय ।।६४।।

चवरासी को दुख निरखि, कैसा जमपुर माँह ।
अपनी दसा बिचारि निति, नहिं आवत उर आह ।।६५।।

बाल कुमार जुवा गयौ, बृद्ध भयौ तन आय ।
क्या क्या भोगेउ देह धै, कूच गई नगचाय ।।६६।।

अब पल कौ भूलै नहीं, अपना काम कमाय ।
लगे असाढ़ किसान जिमि, खान पान बिसराय ।।६७।।

कौड़ी ढेर लगायकै, कहै सुनौ रे भाय ।
जो जासो ढोइब सधै, सो सकलौ लै जाय ।।६८।।

खान पान औ नींद तजि, ढोवै दिन औ राति ।
कौड़ी छाँड़ि कै दूसरी, चरचा नहीं सोहाति ।।६९।।

कौड़िहु भरि नाहीं लगत, जग में काहुहि राम ।
कौड़िउ भरि परलोको नहिं, भले बिधाता बाम ।।७०।।

दोहा—कोई खटाई खाय जो, लखि आवत मुख नीर ।
रामहि सुमिरत देखिकै, उठत नहीं उर पीर ॥७१॥
जेती लगति खटाइ मुख, वतनेउ नाहीं राम ।
'बना दास' अचरज यही, कैसे ह्वै है काम ॥७२॥
गाँजा भाँग अफीम जेहि, लागि तमाकू जाय ।
'दास बना' तेहि समय महँ, दूजा नहि दरसाय ॥७३॥
विषय लागि जतनी जिवहि, वतने लागहि राम ।
'बना दास' बदिकै कहैं, होय वही दिन काम ॥७४॥
तिनका मानै छोट जनि, नहीं इन्द्र को मोट ।
सब दिन समता में रहै, यही साधुता ओट ॥७५॥
जतना लागत बैल प्रिय, सदा किसानन काहि ।
वोतने लागहि राम प्रिय, काहेक जमपुर जाहि ॥७६॥
जाको लागे राम प्रिय, सो गहि तन भे राम ।
लहे पुराने भवन को, पाये अति बिश्राम ॥७७॥
अद्वै ज्ञान लहे बिना, आवा गँवन न जाय ।
श्रुति पुरान मत सन्त को, कोटिन करै उपाय ॥७८॥

*

संत सेवा निरूपण अंग

दोहा—'बना दास' गति सन्त की, को कहि पावहि पार ।
भोगत जीवन मोष सुख, लेस नहीं संसार ॥१॥
कामधेनु का कल्प तरु, का कुबेर को बित्त ।
बना दास' निज रूप में, लीन भयौ जब चित्त ॥२॥
का बिधि पद का इन्द्र पद, लोकपाल नरपाल ।
'बना दास' जब मन भयौ, ब्रह्मानन्द बहाल ॥३॥

दोहा—कहाँ बेद कहँ सास्त्र है, अष्टादसो पुरान ।
कहँ बिद्या कहँ ब्याकरन, बुद्धि सुद्धि अस्थान ॥४॥
कहाँ देह कहँ गेह है, इन्द्री गोचर प्रान ।
अहंकार कित संभवै, रह्यो ब्रह्म निर्बान ॥५॥
तिन दरसन को ना तुलै, सकल देव का दर्स ।
तीरथ मय पद सलिल है, सकल सुकृत असपर्स ॥६॥
तप ब्रत दान अनेक बिधि, जज्ञ जहाँ लगि कर्ब ।
तिनकी सेवा है धरा, और पसंघा सर्ब ॥७॥
सम दम दाया जम नियम, साधन मोछ जो आहिं ।
'बना दास' सब कुछ करै, सन्त कृपा सम नाहिं ॥८॥
कामधेनु अरु कल्प तरु, बरदायक बहु देव ।
जो फल सब से ना मिलै, साधु सेय लो लेव ॥९॥
अवर के दाता हैं सबै, मुक्ति के मँगता आप ।
साधु देत हैं मोच्छ पद, मेटि सकल संताप ॥१०॥
काहे बहु तीरथ करै, क्यों सेवै बहु देव ।
क्यों तप मख ब्रत दान कर, जानत नाहीं भेव ॥११॥
सब तजि सेवै साधु पद, दिढ़ ह्वै करु सतसंग ।
मनवाँछित सब होइ सिधि, बिन प्रयास भवभंग ॥१२॥
सन्त जवन करि देत हैं, सो न सकै करि राम ।
तेहि तजि भटकै अवर मग, भले बिधाता बाम ॥१३॥
सन्त की समता कोउ नहीं, तिहुँ पुर चहुँ जुग माँहि ।
आगम निगम पुरान कह, 'बना दास' कोउ नाहिं ॥१४॥
निसकामी जाको भजै, तजै सकामी ताहि ।
'बना दास' बिस्वास बिन, घर घर भटका खाहिं ॥१५॥
'बना दास' सन्तै कृपा, जानै सन्त सरूप ।
ह्रिदै नैन बिन किमि लखै, परा मोह तम कूप ॥१६॥

दोहा—सिव बिधि सेस गनेस श्रुति, सारद सन्त सकुचाय ।
कबि कोबिद केतो करै, महिमा पार न जाय ॥१७॥
तिहुँ पुर चहुँ जुग काल तिहुँ, जहँ लगि सिष्टि प्रमान।
जो तन धरि रामहि भजै, ताकै सम को आन ॥१८॥
बिधि प्रपञ्च जहँ लगि अहै, सब से नीचा होय ।
मन बच क्रम रामहि भजै, तासे ऊँच न कोय ॥१९॥
सब साधन को सिद्धि है, सहजे सन्त सनेह ।
'बना दास' नहिं सन्त प्रिय, नाहक धारे देह ॥२०॥
सन्त सेय अभिमत लहै, नहिं यामें सन्देह ।
भव बन्धन नासै सही, 'बना दास' कह येह ॥२१॥

सन्त लच्छन निरूपण अंग

चौ०—गत उद्वेग दंभ नहिं दरसै तिगुनातीत अमानी ।
सुठि सन्तोष मोष जीवन जग बुद्धि खानि बिज्ञानी ॥१॥
लोक बेद बिस्तार सकल बिधि अन्तः कर्न सो त्यागी ।
जाइसमाने महासांति में 'दास बना' बड़ भागी ॥२॥
धीरमान कवि परुष बचन नहिं सदा यकान्त नेवासी ।
निंदा अस्तुति करै न मानै अति ही आस बिनासी ॥३॥
सर्बभूत निर्बैर निरालस डर बासना न कोई ।
सून्नि उपाय असंसै निसिदिन हानि लाभ नहिं दोई ॥४॥
संग्रह त्याग बिराग दुहुन ते गहिरे सिन्धु समाना ।
'दास बना' निर्भै निरनै नित देखत मनहु अजाना ॥५॥

दोहा–कम बोलत पलको कम डोलत डग-मग पग महि लागै ।
निर्जन में रुचि सदा रहन की अति प्रपंच से भागै ॥६॥
हरि जस श्रवन सुनत गद गद गर नैनन प्रेम पनारे ।
पल पल पर पुलकत सनेह सुठि तनकी दसा बिसारे ॥७॥
पर दुख दुखी सुखी पर सुख से आपु दुहुन ते न्यारा ।
'दास बना' गुन साधु सेस सत बरनत लहै न पारा ॥८॥
रूप कुरूप ऊँच अरु नीचा यह कबहीं न बिचारै ।
सब घट में है येक आतमा सोई सुरति सम्हारै ॥९॥
पंछ पात बकवाद न भावत अन्तःकर्न हेराने ।
सहज समाधि साधि कै बैठे हैं श्रम सकल सिराने ॥१०॥
देस काल निसि दिवस कहाँ हैं हरख सोक नहि आनै ।
तिथि औ बार बिचार न कोई बिधि निषेद नहि मानै ॥११॥
श्रुति पुरान बिस्तार भुलाने सिथिल बैषरी बानी ।
माते रहत ब्रह्म सुख हरदम सहजे सुरति समानी ॥१२॥
चौगला–देह बुद्धि की सुद्धि न सपनेहु सकल युद्ध जै पाई ।
'दास बना' सुख बचन भिन्न मन सकै कवन कबि गाई ॥१३॥
करिकै कृपा सँभरिहै मोका तेइ सन्त जन नीके ।
'दास बना' नहि राखि कहौं कछु जानत हैं गति हीके ॥१४॥
जो कछु है धारन के माफिक तामें कमी न कोई ।
जो जो बस्तु त्याग के जोग है सो जामें नहि होई ॥१५॥
सोइ बिसेषि संत पद जानहु 'दास बना' अस भाषै ।
यहू ग्रन्थ बहु सद्ग्रन्थन को सो बिचार नित राखै ॥१६॥
लच्छन अवर कहाँ लौं कहिये सन्त अनन्त समाना ।
'दास बना' कोउ पार गया नहिं मैं किमि करौं बखाना ॥१७॥
सर्व अंग अनभौ अगाध नहि साध रही कछु बाकी ।
जड़ चेतन की ग्रंथिहि छोरे चाह करै अब काकी ॥१८॥

चौगला—बंध मुक्त का भान भुलाने ब्रह्म भये तन याहीं ।
ब्रह्मा कीट प्रजन्त येक जेहि मल नहि मानस माहीं ॥१९॥
सत संगति सुख अल्प पल्क सम गाइ सकति नहि बानी ।
ब्रह्मा इन्द्रदेव को दरजा अति ही लघु करि जानी ॥२०॥
महिमा साधु अगाध अनूपम सकै न बेद बखानी ।
बिधि हरिहर गननायक हारहिं कबि कोबिद किमि जानी ॥२१॥
सो मैं गाइ सकौं कौनी बिधि सकल भाँति मतिहीना ।
मसक सुमेर भार नहि लेवै नभ न सकै चढ़ि मीना ॥२२॥
कोमल बिसद बिबेक महानिधि रिधि सिधि सकल बिरागी ।
'दास बना' जल मीन दसा अति राम नाम लव लागी ॥२३॥
साधन अवर न सपनेहु जानै नहि मानै न बतावै ।
'दास बना' मन बचन करम करि राम नाम लव लावै ॥२४॥
उदासीन अरि मीत न कोई रीति बिलच्छन सारी ।
मन क्रम बचन अनीति न जानै नित निज दोष बिचारी ॥२५॥
परगुन गाहक दोष न देखै मानद आपु अमानी ।
तन मन बचन न काहुहि दुखवत है गुन अकथ कहानी ॥२६॥
जो कोउ अनहित करै निरन्तर हित ताहू को बिचारै ।
दै उपदेस बोध नाना बिधि भव सागर से तारै ॥२७॥
तन मन इन्द्री करै जवन कछु सो तिन में बरतावै ।
आतम बोध अगाध आपु में एक नहीं ठहरावै ॥२८॥
सोऊ कारज कारन माफिक अवर सकल भे त्यागा ।
बाहर भीतर सदा अकर्त्ता निज सरूप अनुरागा ॥२९॥

दोहा—इन्द्री अन्तःकर्न तन, प्रान सांति सर्वंग ।
पदुम पत्र परमान है, सब से सदा असंग ॥३०॥

चौगला—जेहि मारुत गिरि मेरु उड़ाते अपर को कवन ठेकाने ।
'दास बना' तामें सुमेर सम ठहरि रहे मरदाने ॥३१॥

चौगला-राम सुजस चाहै सो गावै साधु को अधिक अपारा।
ताते सन्त बड़े रामहु ते सदा गुनन ते न्यारा ॥३२॥
कामिनि काठ काच कंचन सम राग देष से न्यारा।
बोष अगाध अमित गुन सागर बरनत सब हिअ हारा ॥३३॥
कोमल बचन बिचारि कै बोलै सब दिन हरि सनबन्धी।
वाय रहे तन तरु गहि मौनहि नहि पावत कोउ सन्धी ॥३४॥
दोहा-धन्नि धन्नि है सन्त जन, त्रिभुअन के आधार।
जाकी समता और नहिं, कर श्री मुख निरधार ॥३५॥

सन्तोष निरूपण अंग

दोहा-किनका भरि के कारने, निसदिन फिरत पपील।
पील खात येकै ठवर, मन भरि कैसो डील ॥१॥
जहाँ पवन की गति नही, पहुँचै तहाँ अहार।
कुसियारी के कीट को, कस नहिं करत बिचार ॥२॥
अजगर ठौर परा रहै, सब से मोट सरीर।
बिन भोजन कैसे जियै, साधु धरै किन धीर ॥३॥
नदी जात जब सिंधु महँ, कछु न कामना ताहि।
उनको दूजी ठवर नहिं, बिन निधि कहाँ समाहि ॥४॥
जथा लाभ में तोष निति, भोगै जीवन मोष।
'बना दास' काहू बिषे, कित देखै गुन दोष ॥५॥
बिन सन्तोष न सुख कहूँ, तिहुँ पुर तीनिउ काल।
'बना दास' सन्तोष बिन, सब कोऊ कंगाल ॥६॥
जिन पायौ सन्तोष धन, सब से परम अनूप।
साहु महाजन सेठ सब, कँगले लागत भूप ॥७॥

चौगला-बादसाह का माल है, लोक पाल सुरपाल।
'बना दास' सन्तोष जब, सबै लगत कंगाल ॥८॥
श्रुति पुरान सब कोउ कहै, तोष साधु शृंगार।
'बना दास' सन्तोष नहि, साधू बिना बिचार ॥९॥
जो नहि मानै परारबद, नहि सन्तोष भरोस।
'बना दास' सो साधु कस, अघ ऐगुन का कोस ॥१०॥
एकै माने काज होत है, तीनिउ में का बाकी।
'दास बना' येकौ नहि मानै, कस न परै सिर चाकी ॥११॥
पुनि तिहुँ एकै परत देखाई, देखा भले बिचारी।
कहन भरे को भाव तीन हैं, मानहु त्रिबिधि अटारी ॥१२॥
महल तिमंजिला अति सुखदाई, मुक्ति तख्त तहँ राजै।
उपमा हेरे मिलति न कोई, कबि कोबिद मति लाजै ॥१३॥
राम कृपा ते करि बहु साधन, सिद्धि अवस्था पाई।
कोटिन मद्धे कोइ सन्त जन, तहाँ बिराजत जाई ॥१४॥
मुक्ति तखत पर सान्ति बिछौना, ज्ञान नींद में सोवै।
'दास बना' बिज्ञान उसी-सी, दुतिआ कतहुँ न जोवैं ॥१५॥
आनंद अतर पूरि खुसबूई, डोलत त्रिबिध बयारी।
एक गरीबी दुतिय दीनता, तीजे छमा बिचारी ॥१६॥
ओढ़े सदा अमानी चादरि, सोभा बरनि न जाई।
भाव बिचारि साधु सुख पैहैं, जिनके सुरति समाई ॥१७॥
अवर के बूझ माहि नहि आवत, ताते को रस जानै।
'दास बना' सब सुखी तहाँ हैं, जहँ जाको मन मानै ॥१८॥

दोहा—मन बुद्धि चित्त हंकार के, परे भये जन सन्त।
श्रुति पुरान कबि कोबिदौ, पावत कोइ न अन्त ॥१९॥

प्रारब्ध निरूपण अंग

दोहा—जनमें जननी जठर ते, दिन प्रति करत अहार।
बृद्ध भये लै ना मिटी, हाय हाय धिरकार ॥१॥
दुख भोगत बिन ही जतन, सुख की करत उपाय।
'बना दास' अस साधु ह्वै, बूड़ि मरै जल जाय ॥२॥
ज्ञानी मानत परारबद, तू तन मन नहिं होय।
अपनो सुद्ध सरूप लखु, सुख दुख कहूँ न कोय ॥३॥
सोम सूर समरथ बड़े, राहु ग्रसत दिन पाय।
टारे टरट न कोटि बिधि, परारब्दि असि आय ॥४॥
पंच तत्तु के तन सबै, येक करत है राज।
येक घर घर दाना माँगत, तनिक न आवै लाज ॥५॥
छीर पान मोती चुगत, परारब्दि बस हंस।
आगि चबात चकोर है, बक नासक झख वंस ॥६॥
कुत्ता घर घर डोलता, कवर-कवर के लागि।
परे परे अजगर भखै, कैसी वाकी भागि ॥७॥
गीध गला आमिष भषै, ताकी दृष्टि अपार।
करिका मस्तक फोरिकै, जीवत सिंघ अहार ॥८॥
भागि-भागि सब कोइ कहै, तब क्या खेदै वाहि।
साद भागि जे भागि से, पछुआवत हैं ताहि ॥९॥
भागि भरोसे जे रहैं, ते अति मति के हीन।
वह तौ भागी जाति है, तू कत होवै दीन ॥१०॥
अनायास ही भोगिहै, दुख सुख सदा सरीर।
सदा अचल निज रूप रहु, तोहि परी का भीर ॥११॥
जनम मरब बूड़ब तरब, दुख सुख तो में नाहि।
हानि लाभ सोको हरष, मन बुधि की गति आहि ॥१२॥
अनायास में नाइ दे, पंचतत्तु की देह।
निज कृत सुख दुख भोगिहै, तू राखै मति नेह ॥१३॥

दोहा–टैरा चाबत नीम को, खात बबुर के काँट ।
देखहु लम्मक-ग्रीव को, भोजन रूप कुठाट ॥१४॥
लिखा जो दुख सुख भाल में, सो कम परिहै नाहिं ।
'बना दास' अस समुझि कै, मगन रहै मन माँहि ॥१५॥
जे मानुष मरि जात हैं, तेरही बरखी होय ।
गया पिंड अरु श्राद्ध को, करते हैं सब कोय ॥१६॥
मरे न छूटत परारबद, जीते किमि तजि देय ।
कहँ मछरी कहँ आम है, मिलैं समय पर तेय ॥१७॥
येक तबेले में बँधे, पायस मोहन भोग ।
अस्व जिलेबी खात है, परारब्द संजोग ॥१८॥
नाना बिधि दाना तेई, गलियाये ते खात ।
एक छान्हे घूरन चरत, तबहुँ न पेट अघात ॥१९॥
एक स्वान सरदार के, सोवत सेज बिछाय ।
नाना बिधि भोजन करै, येकै हाड़ चबाय ॥२०॥
को कोयल काली किया, कौन किया बक सेत ।
अपनी अपनी परारबद, समुझत नाहिं अचेत ॥२१॥
संकर की प्रतिमा कोई, सुबरन मण्डप माहिं ।
गंगा जल बहु सुमन लै, पूजत हैं सब ताहिं ॥२२॥
धूप आरती दरबि जुत, बिबिध लगावत भोग ।
सीस नाइ लाखन परत, परारब्द संजोग ॥२३॥
येकै परे कुठावँ में, तहाँ कोई नहिं जाय ।
परारब्द बस स्वान तहँ, मूतत टाँग उठाय ॥२४॥
येक लोहा गो गर चलत, एक धरे हरि भौन ।
बस्तु एक परारब्दि बसि, यामें संसय कौन ॥२५॥
जड़ भोगत परारब्द को, चेतन मानत नाहिं ।
'बना दास' कौनी तरह, ज्ञान सिखावै ताहि ॥२६॥

दोहा–तन मन इन्द्री बिषय अरु, प्रान प्रकृति परपंच ।
'बना दास' निज रूप लखि, दिष्टि न आवत रंच ॥२७॥
जलज जोंक जलते दोऊ कमल चढ़त सुर सीस ।
परारब्द बसि वह पियत, लोहू बिस्वा बीस ॥२८॥

भरोसा निरूपण अंग

दोहा–गर्भ माँहि रच्छा किया, सो भी रच्छक आजु ।
साखी बेद पुरान हैं, तू क्यों करत अकाजु ॥१॥
प्रथम पयोधर प्रकट करि, पीछे जायो तोहिं ।
सो बिचारि बिस्वास नहि, अचरज आवत मोहिं ॥२॥
हरि बरखा पूरन करत, जल करि सब संसार ।
तोर पेट नहिं भरैंगे, तजत न क्यों अबिचार ॥३॥
चातक पावत स्वाति जल, कछु नहिं करत उपाय ।
गंगा जमुना सरस्वती, सिन्धु तीर नहिं जाय ॥४॥
कैसी टेढ़ी टेक है, टेढ़ बूँद नहिं लेय ।
वह जड़ तू चैतन्य है, तापर चित्त न देय ॥५॥
लोक बेद भो बिसद जस, हठ कीने कसलाह ।
सठ मन कस मानै नहीं, हरि के हाथ निबाह ॥६॥
माता तेरी परारबदि, पिता राम बिस्वास ।
तोष तखत पर सोइ रहु, 'बना दास' तजि आस ॥७॥
चातक टेक अनूठ है, तू कत जूठा खाय ।
स्वाति बुन्द रघुनाथ कर, ताते सदा अघाय ॥८॥
निर आसा निरजतन ते, प्रापति जो कछु होय ।
सो आवत है राम कर, दूजा नाहीं कोय ॥९॥

दोहा–अरपि दिये तन सरन में, अब तोसे का काम ।
वोह धन तो अब आन को, करै चहै जो राम ॥१०॥
जो काहू को देत कछु, लोभ करत नहिं कोय ।
जो तामे ममता करै, नाहीं दीनो सोय ॥११॥
ब्रिस्व भरन भगवान हैं, जो भरि हैं वै नाहिं ।
तो तेरी अवकाति क्या, समुझत नहिं मन माँहि ॥१२॥
हरि भरिहैं हरिहैं कवन, हरि हरिहैं को देय ।
रीते रीते सब कोऊ, ताते यह मत लेय ॥१३॥
तिहुँ पुर दुखिया आपको, सुखिया नाहीं कोय ।
जो दुखिया से सुख चहै, सबसे दुखिया सोय ॥१४॥
मैं जानौ सन्तोष नहिं, परारब्दि क्या होय ।
निज बल जग की आस तजि, राम दुआरे सोय ॥१५॥
सुखिया सीता राम हैं, जाहि करैं सो होय ।
ताते सुखिया सन्त जन, अवर न दूजा कोय ॥१६॥

सवैया—भौंन बिभीषन को न जरो प्रह्लाद फारिकै खंभ उबारे ।
मद्धि सभा द्रुपदीपट बृद्धि दुसासन से भट खींचत हारे ॥
भारत में भरदूल के कारन घंट धरे हरे जुद्धि मझारे ।
'दास बना' करु राम भरोस जो हैं जन हेत सदा रखवारे ॥१७॥
नाना बिपत्ति सहे सुत पांडु सुजोधन से भट पाये न पारे ।
भाँति अनेक सम्हार किये हरि बैरिन को कुरुखेत पछारे ॥
पाहन सेतु बधो जल ऊपर रावन से भट भूरि सँघारे ।
'दास बना' करु राम भरोस जो हैं जन हेत सदा रखवारे ॥१८॥
रंक विभीषन को किये भूप सुकंठ के कारन बालिहि मारे ।
कोटिन बीर हते घननाद से जानकी लै प्रभु औध पधारे ॥
सेवरी गीध महागति दीन औ जज्ञ समय मुनि रक्षक भारे ।
'दास बना' करु राम भरोस जो हैं जन हेत सदा रखवारे ॥१९॥

गनिका औ अजामिल को गति दीन हराम कहे तेउधाम सिधारे।
ग्राह गहे अवगाह महानद राखे गइन्दहि ताहि सँघारे॥
काग भुसुंडिहिं काल न ब्यापत माया महाबल बेगि नेवारे।
'दास बना' करु राम भरोस जो हैं जन हेत सदा रखवारे॥२०॥

दीन सुदामहि जो निधि दीन बिलोकत इन्द्रहु को मदहारे।
आनि दिये गुरु के सुत सादर जो ब्रज हेत गोबर्धन धारे॥
गोपिका गाय औ गोप महाप्रिय कंस बिधंस किये बल भारे।
'दास बना' करु राम भरोस जो हैं जन हेत सदा रखवारे॥२१॥

बेद पुरान प्रसिद्ध पुकारत है हरि सन्तन प्रान पियारे।
सारद सेस सदा जस गावत भाँति अनेक न पावत पारे॥
हैं न मिले उपमान तिहु पुर, तो से तुही नरनाह दुलारे।
'दास बना' करु राम भरोसे जो हैं जन हेत सदा रखवारे॥२२॥

सोक समुन्द्र बिदेह परे सिअ सोचत है सब लोग दुखारे।
आये नरेस अनेकन देस किये नर बेस रहे भट भारे॥
देव अदेव न कोऊ बचा मिथिला पुर को तिहु लोक सिधारे।
तोरे सरासन संकर को त्रिन से किये जो है सुमेर से भारे॥२३॥

जाट धना जमो खेत घना अरु बीज को लै मुड़िया सब खाये।
प्यारे सदा सदना रयदास कबीर जी जाय समुद्र हटाये॥
पीपहि छाप दया करि दीन कहै सब नानक चक्की चलाये।
'दास बना' करु राम भरोस जो दासन हेत सदै उठि धाये॥२४॥

मीरा किये बिषपान प्रसिद्ध है संकर चोपि हलाहल खाये।
सोखि लियौ घट को सुत सिन्धु बढ़ो गिरि बिंधु सो बेगि घटाये॥
सन्त सिरोमनि श्री तुलसी भे गऊ को सुना नामदेव जियाये।
'दास बना' करु राम भरोस जो दासन हेत सदै उटि धाये॥२५॥

बासव को सुत बायस ह्वै सिय पाँय में आय कै चोंच लगाये।
सींक सरासन पीछे परो तिहु लोक फिरो न कहूँ कल पाये॥

आय गहे जबहीं सरनागत लै यक लोचन ताहि बचाये।
'दास बना' करु राम भरोस जो दासन हेत सदै उठि धाये ॥२६॥

धीर धरै न धरा जेहि काल बेहाल तिहुँ पुर दैत सताये।
रावन दुष्ट सो कष्ट सहे सुर ह्वै अति आरत दुःख जनाये॥
आय भये दसरत्थ के लाल हवाल जबै सबकी लखि पाये।
'दास बना' करु राम भरोस जो दासन हेत सदै उठि धाये ॥२७॥

गर्भ के त्रास में पास करी जिन जन्म समै सब भाँति बचाये।
मात पिता ह्वै सम्हार किये पुनि ह्वै कै गुरू परलोक लखाये॥
रच्छ करै पल में प्रति स्वाँस में अन्त समै को बड़ो बल पाये।
'दास बना' लिये पारस हाथ दरिद्र की भै अति ताजुब आये ॥२८॥

राजि रहे हरि रोमहि रोम में सोम से सूरलैं औ त्रिन ताईं।
नीर में छीर में औषद अन्न में रोगहु में मिलि होत सहाई॥
तेरे लिये तिहुँ लोक रचे नहिं राम सुभाव को तू लखि पाई।
,दास बना' कित सोच करै नित सूतें पसारिकै पाँव सदाई ॥२९॥

भक्ति बिराग औ ज्ञान बिज्ञान औ सान्ति को स्वाद भली विधि पाई।
जेतै बिकार ते द्वार न आवत मानहु चौकी करै कटकाई।
याते पदारथ कौन त्रिलोक में जाके लिए उर सोक जनाई।
'दास बना' कित भूलि पर्‌यो बित ऐसो धरो कर जानि न पाई ॥३०॥

जैसी करी है करी के लिए हति ग्राह को बेगहि ताहि उबारे।
जैसी करी प्रहलाद के कारन फारिकै खंभ को ,दुष्टहिं मारे॥
जैसी करी द्रुपदी हित नाथ दुसासन से पट खींचत हारे।
तैसी करी किन 'दास बना' दिसि मे बड़ी बार ते तोहि पुकारे ॥३१॥

तोहि पुकारत रूप भयो तब मैं ही नहीं अभरा को भरी है।
नाम प्रभाव प्रतच्छ लखे नहिं जानि परै दहुँ कैसी जरी है॥
भृङ्गी करै जिमि आपु समान पुरान औ बेद में साषि धरी है।
कैसे भजै नहिं ऐसो कृपाल जो 'दास बना' दिसि ऐसी करी है ॥३२॥

ऐसी करी जो कहैं में न आवत रूप न रेख न आदि न अन्त जू।
मद्धि कहूँ नहि ताकी मिलै जहँ,जात करोरिन में कोइ सन्त जू॥
नेति पुकारत बेद निरन्तर नारद सारद सेस कहन्त जू।
पुर्ष पुरान न आवत ध्यान बिचारे सुजान सो जानकी कन्त जू॥३३॥

सत् चित् आनन्द कन्द कृपाल कमाल करी निज रूपहि पाये।
जो नहि कालहु की उर राखत जाके लिए सब साधन गाये॥
जाके लिये नर को तन दुर्लभ देवउ चाहत बेद बताये।
'दास बना' हम ब्रह्म सनातन अक्षै अनूप न जाये न आये॥३४॥

चेला औ सेवक जोग किये पढ़ि सिद्धि कहाय पुजाय लिये हैं।
मंत्र औ जंत्र रसायन जानि कै मंदिर देव बनाये नये हैं॥
साधु की सेवा किये ब्रत जज्ञ औ कै तप दानहु धाम धये हैं।
'दास बना' जौ न बासना नास तौ साधु कहाय न काज भये हैं॥३५॥

इन्द्री सुभाव को चाव गयौ नहि लोभ न मान न क्रोध दहे हैं।
मोह मनोज बिनास मै बासना ना कबहीं गुन बृत्ति बहे हैं॥
ज्ञान बिराग बड़ो अनुराग बिज्ञान को पाय कै सान्ति रहे हैं।
'दास बना' लहे सुद्ध सरूप जे ताही को सन्त बिसुद्ध कहे हैं॥३६॥

सन्त बिसुद्ध करैं जग सुद्ध सराहत बुद्ध औ बेद कहे हैं।
ताको उपाय करै चितलाय मरै कित धाय कै चाह चहे हैं॥
साधन आस भरोस बिहाय कै ह्वै दिढ़ राम को नाम गहे हैं।
'दास बना' लहे सुद्ध सरूप सो भूलि नहीं परपंच बहे हैं॥३७॥

नाम जपे भये राम यही तन गै मन बुद्धि औ चित्त अहं सब।
बिधि और निषेध न जानत बेद गये सब खेद अनन्द भये अब॥
सिष्टि प्रलै थिति भूलि गई नहि जानत देस औ काल अहै कब।
'दास बना' हम ब्रह्म हमीश्वर आवत है उठ स्वास जबै जब॥३८॥

वैराग्य निरूपण अंग

दोहा–नारी नख सिख खोटिहै, छोटि न जानै कोय ।
रोम रोम बिष से भरी, खाव खाव हिय होय ॥१॥
नारी नर्क सरूप है, रमै सो सूकर स्वान ।
बिमुख करन हरि ओर से, ऐसो बिघन न आन ॥२॥
जहाँ बाम तहँ राम नहिं, राम तहाँ नहिं बाम ।
जहाँ बदरी तहँ धाम नहिं, सुबू तहाँ नहिं साम ॥३॥
जबलै उर बस बाम है, तब लै निपट न काम ।
कहाँ प्रीति तहँ राम से, भले बिधाता बाम ॥४॥
पैसा पैसा मति करै, पैसा में बहु पाप ।
जो पैसा संग्रह करै, अन्त होय मरि साँप ॥५॥
पैसा आवत ही उठत, मनोराज बिन कार ।
पैसा कपट खड़ा करै, सब से बेइतिबार ॥६॥
चढ़ी सुरति रघुबर चरन, पैसा आया पास ।
खींचि लिया तेहि षास तें, तुरत दिया करि नास ॥७॥
जहाँ रहै पैसा धरा, तहाँ सुरत्ति बहु जाय ।
निसि जागै सपनेहु लखै, पैसा बुरी बलाय ॥८॥
पैसा पाये मन नसै, सोवत इन्द्री जाग ।
पैसा से परपंच सब, पैसा बड़ी अभाग ॥९॥
पैसा मन भैंसा करै, लादत नहीं थकाय ।
पैसा चित चंचल करै, पैसा बुद्धि नसाय ॥१०॥
अहंकार पैसा बढ़ै, चढ़ै, लोभ अरु क्रोध ।
बढ़ै काम अरु दम्ह मद, कढ़ै सकल उर बोध ॥११॥
पैसा पैसा क्यों करै, पैसा पारी बाट ।
पैसा कारन बिकि रहा, भेष अनेकन हाट ॥१२॥
पैसा पैसा नहिं करै, पैसा में अट पट्ट ।
द्वार द्वार पैसा निती, भेष गया ह्वै नट्ट ॥१३॥

दोहा—कला अनेकन करत है, पैसा कारन भेष।
पैसा से निसि दिन बँधे, पैसा होयगा मेष ॥१४॥
भेष बनाये राम को, पैसा से निति काम।
'बना दास' कहँ साधुता, पैसो भरि नहिं राम ॥१५॥
पैसा निति मिथ्या कहै, पैसा हिंसा होय।
पैसा निति चोरी करै, पैसा पर घर खोय ॥१६॥
पैसा खोवै जनम जग, पैसा भारी रोग।
पैसा हित गुर से कपट, पैसा राम बियोग ॥१७॥
पैसा उर अति सोग कर, पैसा खोवै मान।
'बना दास' देखहु जगत, पैसा सँग बौरान ॥१८॥
परेसान पैसा लिये, पैसा हित हैरान।
'बना दास' देखा दुःखी, पैसा हेत जहान ॥१९॥
पैसा ने कैसा किया, मर्द से बनया जोय।
'बना दास' पैसा लिये, सब कोउ परबस होय ॥२०॥

हद्द किया पैसा बड़ी, सब कोउ हुआ बेहोस।
'बना दास' बिरला कोई, पैसा देखा दोस ॥२१॥

गाँजा भाँग अफीम है, और धतूर सराब।
सब से भारी है नसा, पैसा बड़ा खराब ॥२२॥

आँखी से अँधरा करै, कान से बहिरा होय।
निज सम नहि काहुहि लखै, देह मान निज खोय ॥२३॥

परारब्दि पैसा परा, पैसै पठवै राम।
'बना दास' अट पट परा, साधु करै का काम ॥२४॥

प्रीति विहाय घिनाय उर, जा जरूर जनु जाय।
काज करै यहि भाँति से, संचै नहि मन लाय ॥२५॥

निति मैला को सँग रहत, परारब्द संजोग।
प्रीति न तामैं काहु की, येहि बिधि पैसा भोग ॥२६॥

दोहा—उद्दिम कबहूँ ना करै, राम रजाय सो सीस ।
परारब्दि बसि भोगिये, पैसा बिस्वा बीस ॥२७॥
भजन कीन जो कोउ चहै, सो जनि खाय अघाय ।
काम क्रोध निद्रा बढ़ें, बहु प्रमाद अधिकाय ॥२८॥
पेट भरे आलस बहुत, आवै उर्धी साँस ।
राम रूप नहिं लखि परै, नहीं ज्ञान परकास ॥२९॥
नहिं जागै सोवै बहुत, परा रहै बहु नाहिं ।
नहीं चलै बैठै बहुत, समता रहै सदाहिं ॥३०॥
बहु बोलै खोवै बहुत, चुपौ भये भलि हानि ।
जामें परै न फेर कछु, राखै ऐसी बानि ॥३१॥
तप तीरथ ब्रत दान मष, सब बंधन का हेत ।
कर्म सुभासुभ त्याग करि, हरि दिसि होय सचेत ॥३२॥
पूजा पाठ अनेक बिधि, पैया कूटै नाहिं ।
चोषा चाउर ज्ञान तजि, भूलै बूसी माँहि ॥३३॥
धरनि धाम तिय तन तनै, सकल भूल के अंग ।
इनके कारन नहिं चढ़त, निज सरूप का रंग ॥३४॥
तन में ममता मानि जग, जोरै बहु सनबन्ध ।
निज सरूप पाये नहीं, ते भूले मति अंध ॥३५॥
कनक कामिनी स्वाद अरु, जे भूले सिंगार ।
'बना दास' कौनी तरह, ते जैहैं भव पार ॥३६॥
यह जग भूल सराय है, भूल सम्हारै सोय ।
'बना दास' हरिसन्त गुर, कृपा करैं दिसि जोय ॥३७॥
पल पल भूलन जोग है, निज बल को लह पार ।
'बनादास' हरिबल बली, निजबल सो मझधार ॥३८॥
काम क्रोध मद लोभ अरु, मोह उदै जब होय ।
इत्यादिक मानादि जब, तब रहि जात न कोय ॥३९॥

दोहा—ऐसै ज्ञान बिराग अरु, भक्ति प्रकट जब होय।
लहै सान्ति बिज्ञान के, प्रकृतिन आवर्ति जोय ॥४०॥
हरि मारग अति कठिन है, ज्यों खाँड़े की धार।
महाबिघन कोटिन परै, तबौं न मानै हार ॥४१॥
आठ पहर भूलै नहीं, सूलैं सहै अनेक।
कहर लड़ाई पहर कलि, राखै अपनी टेक ॥४२॥
हरि गुर सन्त कृपा करैं, तबै तरै भव येह।
'बना दास' जीवत मरै, यामें नहीं सँदेह ॥४३॥
तन सराय मन अरुझिगो, गाँठि गई परितीति।
सरुझे बिन सुख किमि लहै, अमित बासना झीनि ॥४४॥
पानी में नहि लखि परत, अति ही जीव महीन।
ऐसै झीनी बासना, अवसर पाय नवीन ॥४५॥
केते झीने बीज महि, नहीं देखाई देत।
जब आवत बरखा समै, तब सब्र जामत खेत ॥४६॥
जब लै जाय न बासना, तब लै भूल बनाय।
'बना दास' कैसेउ नहीं, आवागमन नसाय ॥४७॥
रहित बासना बिरति है, अपर सकल है स्वाँग।
अन्तर्जामी सब लखत, मनहु जमनिका बाँग ॥४८॥
नंगा भये से का भया, जौ काढ़ै तन खाल।
अंतर्जामी से छिपै कैसे ह्रिदय हवाल ॥४९॥
बिद्या से बैराग करु, कहँ लै सहिहै खेद।
'बना दास' सोई गहै, जो अन्ते कह बेद ॥५०॥
'बना दास' भूले बहुत, बिरला पाया भेद।
एक ठवर पर ररि गया, दूरि भया सब खेद ॥५१॥
रिद्धि सिद्धि भिन सम तजै, 'बनादास' बड़ भाग।
श्रुति पुरान मुनि सन्त कह, दुरलभ प्रभु अनुराग ॥५२॥

दोहा–संसारिन की का कहै, ईहैं नरक सरूप।
जे मानत हैं नारि को, सब मे भलो अनूप ॥५३॥

चौगला–हाड़ चाम मल मूत्र रोम नख नारी भाजन जाना।
असुचि मलीन हीन नालायक तहँ मन अति रति माना ॥५४॥
बाम न कोऊ अवर बाम से तासे गला कटावै।
षड्ग धार ताको नहि देखत कैसे सुभ गति पावै ॥५५॥
बुरी बलाय त्यागबे लायक तजै सन्त कोउ सूरा।
बाकी तिहूँ लोक को पेरा कोउ न लहा पद पूरा ॥५६॥
जो कुच-कंचन-रंच न भूलै सो जन ब्रह्म समाना।
'दास बना' ताकी समता को राम रूप नहि आना ॥५७॥
कुच-कंचन की सुरति फुरति नहि सदा ब्रह्मरस भोगी।
'बना दास' गति गूढ़ को जानै गुनातीत सो जोगी ॥५८॥
यही निसानी ब्रह्म मिलन की कुच कंचन नहि प्रीती।
'दास बना' जब यह रस भूलै तब जानी मन जीती ॥५९॥

दोहा–बारे मुख माता चुमै, जुवा भये पर आप।
'बना दास' कासो कहै, यह पूरब का पाप ॥६०॥
जब लगि बालक होत नहि, कह पूरुस की जोय।
'बना दास' लड़िका भये, तब सुत-माता होय ॥६१॥

चौगला–जासे निकसे तामें पैठे, जो पावै सो ऐंठै।
'दास बना' बह बड़ी बिपजंय, नहीं बुद्धि में बैठे ॥६२॥

दोहा–जुवा भये त्यागै नहीं, पीबौ बिषय समान।
बिषई काल अनादि को, जुवा भये लपटान ॥६३॥
भीषम अरु सुकदेव ने, किया यही परमान।
इस्त्री सकलौ एक है, कैसे भे बलवान ॥६४॥
जौ पहिले चेतत नहीं, पीछे करै बिचार।
'बना दास' तबहूँ तजै, तौ भी अति बरियार ॥६५॥

दोहा—समुझे पर त्यागत नहीं, सूकर स्वान समान ।
बेटी बहिनि औ माय तिय, तेकाँ एकै ज्ञान ॥६६॥
केते ऐसे अधम नर, जीव मारि कै खात ।
चौरासी साँसति सहैं, बरबस जमपुर जात ॥६७॥
जिव हिंसा सम पाप नहिं, सब में व्यापक राम ।
सो न बिचारै मूढ़ नर, भे अति निमक हराम ॥६८॥
'बना दास' तेहि पाप से, नर्क रौरवा भोग ।
श्रुति पुरान बरजत सबै, तापै तजत न लोग ॥६९॥
जिउ हिंसा से पाप नहिं, कह बहु बेद बिचारि ।
'बना दास' केते अधम, कन्या डारत मारि ॥७०॥
'बना दास' तेहि पाप करि, परते नर्क अघोर ।
कोटि कलप लगि ना छुटै, ऐसा अघ बरजोर ॥७१॥
नाना पाप कमात जग, मिति कहि हारत सेस ।
ताके नर्क सरूप है, लगत नहीं उपदेस ॥७२॥
मिथ्या सम कोउ पाप नहिं, सब जग भया अचेत ।
तनिक बात के कारने, गंगा कर धरि लेत ॥७३॥
पल पल पाप बिचारिकै, जाहि सारदा हारि ।
इहाँ सदा दुख भोगते, नरक जात झख मारि ॥७४॥
उहाँ से उबरै जब कबहुँ, तब चवरासी भोग ।
नाना जोनिन दुख सहैं, परारब्दि संजोग ॥७५॥
उबरत जग में संतजन, इहौ करत कल्यान ।
जो न होते साधु सब, कैसे लगत ठिकान ॥७६॥
यक दिन दिन-मनि ना उअै, केहि बिधि जाइ अंधेर ।
तिमि न होते सन्त जन, को करि सकत उजेर ॥७७॥
पापी जीवन को सदा, नरक सरिस करि त्याग ।
मुख नहिं देखै भूलि कैं, माथे चढ़ै अभाग ॥७८॥

दोहा—चेला चापर करत है, पापर बेलै कौन ।
जो ताको उद्दिम करै, 'बना दास दुख भौन ॥७९॥
जब बहु बिधि गाँसै कोई, तब करिये उपदेस ।
काम राम कै जानिकै, तबहूं होत कलेस ॥८०॥
लोक बेद परपंच सब, 'बना दास' करि त्याग ।
जो केवल रामहिं भजै, ताकी पूरन भाग ॥८१॥
तीनिउ पुर की कामना, तो को मारे जात ।
'बना दास' सब फूंकि दे, जिमि पलास को पात ॥८२॥
बिन बिराग अनुराग नहिं, बिन बिराग कहँ ज्ञान ।
बिन ब्रिराग बिज्ञान कहँ, साखी बेद पुरान ॥८३॥
जब लै सोवै मोह निसि, जल लै नहिं बैराग ।
'बना दास' त्रैगुन गये, मनहुँ खुले बड़ भाग ॥८४॥
जब बिराग बैराग से, तब ही पूरन भाग ।
'बना दास' फिरि भै कहाँ, पाथर जोंक न लाग ॥८५॥
लोह कहूँ घुन खात है, कौन कहै अस मूढ़ ।
सिद्धि ज्ञान बिज्ञान जब, ब्रह्मानन्द अरूढ़ ॥८६॥
तबहीं पावत सान्ति रस, जब सब भाँति बिराग ।
जब नाहीं अन्तहकरन, तब को करै बिभाग ॥८७॥
चौतिस अच्छर त्यागि कै, सुद्ध सरूप समान ।
'बना दास' हमरे मते, तब बिराग ठहरान ॥८८॥
जब बिराग तन ते भयो, बहुरि बासना त्याग ।
श्रुति पुरान बिस्तार तजि, निज सरूप अनुराग ॥८९॥

उपासना निरूपण अंग

दोहा-ब्रह्म अमोलक लाज है, दसरथ सौदा कीन।
'बना दास' हमरे मते, सबहिं सुलभ करि दीन ॥१॥
ब्रह्म बिसद मानिक अहै, कौसीला सुचि खानि।
सुगम किये सब जगत को, 'बना दास' अस जानि ॥२॥
नेति नेति निति निगम कह, सेसहु साधत मौन।
जौ दम्पति होते नहीं, जानि सकत फिरि कौन ॥३॥
जुग जुग जग कारज किये, को कबि बरनन जोग।
'बना दास' महिमा अमित, सकै कवन कहि लोग ॥४॥
सागर खनवावत नृपति, सरिता बाँधत सेत।
काज सबन को एक बिधि, तिमि कीने जग हेत ॥५॥
पुन्नि पयोधि न इनहि सम, जन्म लिये जहँ राम।
नृप रानी कृत कृत भे, सारे तिहुँ पुर काम ॥६॥
बहुरौ नृपति बिदेह धनि, जहँ सीता अवतार।
रामहु जाके बसि सदा, को कबि पावै पार ॥७॥
धन्नि जनकपुर धनि अबध, धनि धनि सरजू नीर।
'बना दास' धनि धनि बसे, कमला बिमला तीर ॥८॥
धन्नि सहचरि सिआ की, धन्नि सखा रघुबीर।
धनि धनि दासी दास सब, पुरवासी मति धीर ॥९॥
धन्नि भरत अरु लखन जू, धनि रिपुहन रन सूर।
सह अंसन अवतार भो, 'बना दास' परिपूर ॥१०॥
धनि धनि पवन कुमार, जाके रिनिआ राम।
'दास बना' करि जोरि जुग, सबको करत प्रनाम ॥११॥
जे प्रिय सीताराम के, जेहि प्रिय सीताराम।
'बना दास' ताते बिको, मन मेरो बिन दाम ॥१२॥
चौगला-'दास बना' पहुँचे मुकाम जे आँखैं कहत हवाला।
नसा ललाई थकित पूतरी पलक न लागत हाला ॥१३॥

चौगला—अलसाने से रहत हमेसा हरि जस सुनि द्रिग नीरा ।
ढरकि चलत कबहीं भरि आवत पुलकावली सरीरा ।।१४।।
गद गद कर चित सान्त थका मन तनहु थका दरसाई ।
ज्ञान बिराग भक्ति से पूरे जगत न सकत समाई ।।१५।।
उधध रंग लखि परत न कबहीं रहत छके सब काला ।
'दास बना' तन मन अरु नैना कहे देत सब हाला ।।१६।।
मौन से रहत कबहुँ कम बोलत बचन गम्हीर रसाला ।
सार सअर्थ बिबेक से पूरन बिनसा नहिं कोउ काला ।।१७।।
बैर प्रीति लखि परत न कतहूँ समता माँहि मुकामा ।
'दास बना' जहँ पै लच्छन सब कवन भेद तेहि रामा ।।१८।।
धीर बिचार सरल सीतल अति निरबासना निरासी ।
कोमल सील सरस सति बोलनि सदा यकान्त निवासी ।।१९।।
नगिचावै सो लहै सुगन्धी कोउ कोउ छिटके पावै ।
'दास बना' लागे ताला जनु अन अधिकार न आवै ।।२०।।
अैबी करै तरक उर उपजै घूमै बिन फल पाये ।
उनकी प्रीति प्रतीति बढ़ै नहि पुनि तुनि भटका खाये ।।२१।।
गुन यैस्वर्ज सुभाव सन्त को, लच्छन बेद न जानै ।
ताते सबै जथामति गावत थाह सिन्धु को आनै ।।२२।।

छंद—हर्ष सोक न ताहि ब्यापत बसत चौथे लोक ।
देह को कृत जगत देखत जानि सकत न वोक ।।२३।।
निकरि गो मन बुद्धि से जग गलित तन अभिमान ।
रही चंचलता न कोई सिष्टि का नहिं भान ।।२४।।
थिति प्रलै की सुरति नाहीं ब्रह्म माहि मुकाम ।
दसा समुझे कोऊ जानत एक रस बसु जाम ।।२५।।
जड़ चेतनि की गिरह गाँठी छोरि कीने साफ ।
मुक्ति जीवन सदा भोगत जनम मरना माफ ।।२६।।

छंद–सदा दुःख सुख में रहैं सम कटा काल को जाल ।
कर्म साधन सब सिराने ब्रह्म माहिं बहाल ॥२७॥

दोहा–दस स्यन्दन नन्दन अहै, कंदन सब जग जाल ।
'बना दास' बंदन किये, ब्रह्मानन्द बहाल ॥२८॥
दस स्यन्दन सुत ना सुमरि, उमिरि गई सब बीति ।
नर तन धरि सारे कहा, कीने अमित अनीति ॥२९॥
दस स्यन्दन नन्दन बिमुख, जीवन को धिरकार ।
'बना दास' बिष्टा भरै, मुख में बारै बार ॥३०॥
दस स्यन्दन नन्दन बिना, जीवन कवने काम ।
'बना दास' मुख विवर सम, जौ नहिं सुमिरत राम ॥३१॥
मति मंदन चंदन लगै, दस स्यन्दन सुत सेय ।
'बना दास' कित कालिमा, विषय माहिं चित देय ॥३२॥
दस स्यन्दन सुत दस मउलि, रिपु दस अंक समान ।
बढ़त दहाई सुभ सुकृत, नाम सुन्नि सम जान ॥३३॥

घना०-आठ अंग योग के हैं प्रगट पुरान बेद
ताकर बिभाग यह सुजन श्रवन करै ।
जम औ नियम करि आसन से दिढ़ होय
प्रत्याहार प्राणायाम ध्यान धारना धरै ॥
मनन निध्यास करि होय तदाकार पुनि
पाय फल श्रम कर अठयें समाधि सरै ।
'बना दास' राम नाम सो प्रतीति प्रीति जाके
परम प्रकास उर सबही को फर फरै ॥३४॥
भूचरी औ खेचरी औ चाचरी अगोचरी
है उनमनी को साधि कै परोजन जो पाइये
एक राम नाम सो सकल काम सुठी सरै,
रटि राम नाम जोगीराज न कहाइये ।

घ०—तीरथ बरत तप जज्ञ जोग नेम दान
बिबिधि अचार पूजा जाके हेत ध्याइये ।
'बना दास' राम नाम ही सो सारो पूर होत
काहे दौरि दौरि बीज ऊसर बहाइये ।।३५।।

पढ़ै बिद्या ब्याकरन बेद औ पुरान सारे
जानि कै उपनिषद ज्ञान सास्त्र जन्य है ।
आठ अंग जोग करि कष्ट नाना भाँति जामे
पूर जब परै तब एक ज्ञान मन्य है ।
एक ज्ञान करम सकल हरि हेत करि एक
मन बच कर्म राम को अनन्य है ।
राम जस राम नाम राम धाम राम रूप
'बना दास' ज्ञान सो सकल बितपन्य हैं ।।३६।।

ज्ञान औ बिराग जोग जज्ञ तप दान करैं
नेम औ अचार करि तीरथ को धाये हैं ।
पूजें देवी देव बहु ताल बाग कूप खनैं
तंत्र मंत्र जंत्र में अधिक मन लाये हैं ।
पढ़ि कै पुरान बेद सास्त्र द्विग्विजै करैं
बेदबाद माहिं कोई पार नाहिं जाये हैं ।
'बना दास' सब करि हारें कोटि-कोटि बिधि
रहित उपासना न राम कोउ पाये हैं ।।३७।।

मन बुद्धि बचन उपासना न आइ सकै
सोई जन जानै जाके हिये बनि आई है ।
या तौ रघुनाथ जानै रोम रोम बास जाको,
साँस साँस माहि होति जाकर सफाई है ।
पलक पलक में झलक जौ अलग होय
खोय प्रान देय जल मीन कैसी नाई है ।।

—'बना दास' मृतक समान बवरान किधौं
जानै न जहान स्वर्ग नर्क केहि ठाँई हैं ॥३८॥

कनक मकुट सीस जड़ित अनेक मनि
काक पच्च कुंडल अमित छबि छाई है।
तिलक बिसाल भाल भौंह बंक कंज नैन
अधर कपोल दिज नासिका निकाई है॥
आनन सरद ससि मरकत दुति निन्दै
मृदु मुसुकानि अति मेरे मन भाई है।
'बना दास' कंबु कंठ बाल कंध भारी भुज
करि कर सम तामें धनु सर लाई है ॥३९॥

बाम दिसि जानकी जगत जायमान जाते
नखसिख सोभा निधि पार कौन पाई है।
मनहु तमाल ढिग लसत कनक बेलि
अंग अंग कोटि रति काम सकुचाई है॥
रतन सिंघासन पै आसन कनक भौन
सोई जन हिय कंज रहे छबि छाई है।
'बना दास' सिव बिधि सुर सिधि ध्यावै जाको
सील निधि नृप सिरताज रघुराई है ॥४०॥

मोती मनि मानिक जराऊ जोति जगमगै
भागैं पाप ताप जाके जाने गुन गाथ के।
कैधों है बिमान सुरधाम परधामहु के
किये जाके ध्यान ते न भये हैं सनाथ के॥
कैधों देवमंडली बसी है आय पाय पर
कैधों ससि सूर तारे जोर पग साथ के।
'बना दास' सारद गनेस सेस श्रुति हारैं
कहें को प्रभाव जूग जूते रघुनाथ के ॥४१॥

घ०–दास माथ भूषन हरन सब दूषन
प्रताप ससि पूषन प्रकास अदभूती हैं।
जोगी सुर सिद्धि ध्यावैं कठिन ते ध्यान आवैं
कोऊ नाहि पार पावैं मुक्ति की प्रसूति है॥
हीरा है हजारौं धाम कैंधों रति काम धाम
कहै को मुकाम मनि मानिक अकूती हैं।
'बना दास' कामधेनु कामतरु कोटि गुना
सुना कामदायक श्रीरामजू की जूती हैं॥४२॥

देवता न पित्र जानौं बिधि न निषेध मानौं
पच्छपात नाहिं ठानौ राम ही सो काम है।
आस न उपाय राखौं काहू सो न दीन
भाखौं उर अभिलाखौ नाम जपौं वसु जाम है॥
लोक बेद बिदित बिरद रघुबर जू को
ताहि न भजत ऐसो काहि बिधि बाम है।
साधु में प्रमान औ जहान 'बना दास'
कहै, कौसल कृपाल कहे 'रामरट्टा' नाम है॥४३॥

सास्त्र औ पुरान बेद पढ़ि नाना खेद
सहै जप ब्रत तीरथ न होय पूर काम है।
जोग में बियोग रोग तपन सरीर
दिढ़ जज्ञन में लागत अनेक बिधि दाम है॥
नेम न अचार सरै साधन न कछु फुरै
धरम करम जीति लियौ जुग बाम है।
करम बचन मन रुपन न आनि गति
'राम रट्टा' सब भाँति राम को गुलाम है॥४४॥

दोहा–साँचा पिय जाको मिलै, गुड़िया खेलैं नाहि।
'बना दास' जेहि ना मिलैं, मूरति पूजा ताहि॥४५॥

दोहा–श्रुति साधन सब आस तजि, करि उर दिढ़ संकल्प।
राम नाम से होय नहिं, सपनेउ माँहि बिकल्प ॥४६॥
रटिकै अक्षै ज्ञान लह, परम तत्त् है येह।
श्रुति पुरान मुनि सन्त मत, यामें नहिं सन्देह ॥४७॥
जा करि सब कुछ पाइये, जा बिन सकलौ जाय।
'बना दास' अस समुझि कै, रहै नाम लव लाय ॥४८॥
चौगला–दहिने परदा हिंदू खोलैं बायें जमन निकारा।
दोऊ जने हैं अंगै पहिरे ज्ञान भक्ति नहिं न्यारा ॥४९॥
दोहा–रामरूप अस्थूल है, दसरथ राजकिसोर।
सूछम सबके हिय कमल, ललि मोहत मन मोर ॥५०॥
कारन कही बिराट को, त्रिभुवन का बिस्तार।
पग पताल सिर लोक बिधि, जाको वार न पार ॥५१॥
सकल लोक चर अचर जो, नहिं सरूप से भिन्न।
रबि ससि जाके मन-नयन, जानत नहिं मति खिन्न ॥५२॥
तीनि परे परब्रह्म है, परिपूरन सब ठौर।
जामें अन्तर बहिर नहि, उपम लहत न और ॥५३॥
आदि अंत मधि हीन जो, अचल अखंड अपार।
'बना दास' ताके मिले, मिटै दैत बिस्तार ॥५४॥
रूप न रेख अलेख गति, अति उतकिष्ट अनूप।
'बना दास' ब्यापक सकल, सो मम सहज सरूप ॥५५॥

फकीरी निरूपण अंग

दोहा–फिकिरि फन्द फारे नहीं, गई फकीरी बूड़ि।
'बना दास' फजिहति महा, हिजरनि खाइनि मूड़ि ॥१॥

दोहा—फिकिरि फकीरी खाति है, खाय फकीरा फिक्र।
'बना दास आठो पहर, लाय नाम की जिक्र ॥२॥
फिकिरि फारि कै फेंकि दे, फरक परै कहुँ जाय।
'बना दास' बेफिकिरि ह्वै, सहज सरूप समाय ॥३॥
सुख इच्छा जब ही करत, पहिले दुख परि जाय।
'बना दास' इच्छै नहीं, फिर दुख कहाँ समाय ॥४॥
फिकिरि फरक नाहीं गई, भई फकीरी कौन।
फरक भये संसार से, फेरि फँसे दुख भौन ॥५॥
फरमावै कबहूँ न कछु, फरक फन्द को फारि।
फिरि फसाद उर ना धारै, फिकिरि जाय झख मारि ॥६॥
फीका अति संसार सुख, तामें फिकिरि कमाय।
फिरि फिरि छाती फारिहै, है फकीर किन जाय ॥७॥
फिकिरि गये बिन फकर नहि, फारै फंद फसाद।
फिरि फिरि फजिहति क्यों परै, मूरुख बिना अवाद ॥८॥
फजिहति तेरी आदि है, ताते फिरि बरबाद।
ह्वै फकीर फूटी नजरि, फेरि फँसत ना स्वाद ॥९॥
फते लेय संसार से, फारै फन्द फसाद।
'बना दास' फिरि निति रहै, ब्रह्मानन्द अबाद ॥१०॥
फाटै हिअ फूटै नयन, क्रूर भये दिसि राम।
'बना दास' फिरि कहु कहा, किया फकीरी काम ॥११॥
फेरि फेरि फजिहति परै, फिरै न हरि की ओर।
फिकिरि फारि छाती गई, करि काला मुख तोर ॥१२॥
फिकिरवन्द काहे रहत, फाटि नहीं हिअ जाय।
'बना दास' फजिहति परा, राम सरन में आय ॥१३॥
फिकिरिवन्द ताते रहत, फूटि आँखि है तोरि।
राम सुभाव न तू लखा, दिया फकीरी बोरि ॥१४॥

दोहा—फाटैं छाती फिकिरि की, फुरै नहीं हिअ ओर।
'बना दास' हम आतमा, फरक होय मन दौर ॥१५॥
फंदा फारै काल का, फुरै न फिरि जीवत्तु।
सो फकीर सिरमौर है, इसी जीव एकत्तु ॥१६॥
फिरि इन्द्रौ पद तुच्छ है, पाये जीवन मुच्छ।
'बना दास' फिरि फिकिरि कहँ, भई फकीरी सुच्छ ॥१७॥
किये फकीरी क्या भया, फिकिरि करै उर दौन।
फली फकीरी ताहि की, फेरि न आवा गौन ॥१८॥
फेरी घर घर देत है, ते कहँ माँगौ फेरि।
तबौ न माँगैं राम से, ई देखौ अन्धेरि ॥१९॥
जे फकीर दिल फैल हैं, ते फरमावैं नाहिं।
फते लिया तिहु लोक ते, फरमावैं फिरि काहिं ॥२०॥
फाँसी गर में मोह की, छन छन फिरत बेहाल।
फिकिरि फन्द जे निति परे, तिनकी कवन हवाल ॥२१॥
फरक नहीं मन नारि ते, कवन फकीरी कीन।
फेरि लोभ फन्दा फँदे, हिअ कपार दृग हीन ॥२२॥
फैले दिन में ले फते, फारि काल का फन्द।
काल जाल काटा नहीं, सो फकीर मति मन्द ॥२३॥
तन मन धन को फूँकिआ, भई फकीरी पूरि।
'बनादास' जौ फिकिरि बसि, राम मिलन अति दूरि ॥२४॥
ब्रह्मानन्द आबाद जे, ताहि फकीरी स्वाद।
'बना दास' जे फिकिरि बस, बे अबाद बरबाद ॥२५॥
'बना दास' फिरि फिरि फुरै, हम ईस्वर हम राम।
ताकी समता कवन की, सो फकीर सुख धाम ॥२६॥
फिरि फिरि करैं उपाय सोइ, जाते जाइ फसाद।
'बना दास' तब निति रहै, सहज सरूप अबाद ॥२७॥

दोहा—धीरज टोप सम्हारिकै, बरछी चौष बिबेक।
खरा तोष भोजन करै, धरै यकंगी टेक ॥२८॥
सूर होय समसेर लै, ज्ञान की चोखी धार।
कतल करै दल मोह का, है फकीर बरियार ॥२९॥
धारि धनुष बैराग को, संजम नाना तीर।
सुमिरन सुरति सम्हारि कै, फते लेय सुफकीर ॥३०॥
सम दम छुरी कटार है, भक्ति ढाल दै वोट।
'बना दास' बकतर क्षमा, रोक रिपुन का चोट ॥३१॥
श्रुति की लेइ सहायता, पुनि मंत्री सतसंग।
सैन सम्हारै जम निअम, जुद्धि भूमि कर जंग ॥३२॥
बल भारी श्री गुरु कृपा, जैति अनुग्रह ईस।
'बना दास' कस गाफिली, काटु रिपुन का सीस ॥३३॥
हिम्मति सुकृत सँभारि कै, सन्त दया उतसाह।
सत्ति अस्व असवार है, चलै समर की राह ॥३४॥
बहु प्रकार तप बाजने, नेम धुजा फहरात।
दल बल सकल सम्हारिकै, साजि चलै परभात ॥३५॥
छत्र सीस बिज्ञान को, हाथी सांति सवार।
सुनि खरभर दल मोह को, कादर ह्रिदै दरार ॥३६॥
जस नकीब आगे चलै, कडखा बोलत रूर।
कादर का पग डगमगै, सुखी होत रन सूर ॥३७॥
करत लड़ाई बीति गो, कोटिन कलप न छूटि।
'बना दास' अब हरि कृपा, गयौ मोह गढ़ टूटि ॥३८॥
हरि गुंन सन्त सहाय ते, जै पाई भै नाहिं।
भागि फउज सब प्रकृति की, मारत देखत जाहिं ॥३९॥
मारि भया खैकार दल, कटत मुसाहेब सीस।
'बना दास' हरि ओर से, कृपा मिलत बकसीस ॥४०॥

दोहा–जोग जुक्ति गोली चलै, रिपु दल सकल परान ।
राम नाम गोला चलै, मची मारु घमसान ॥४१॥
चिन्ता को चूरन करै, मोह को डारै मारि ।
'बना दास' लोभहिं दलै, कामहिं बेगि पछारि ॥४२॥
क्रोध मारिये बोध से, मान मर्दि करि गर्द ।
'बना दास' मासर्ज हति, सो फकीर में मर्द ॥४३॥
मर्द गर्द करि बासना, किया दर्द सब दूरि ।
जे न मर्द ते बर्द से, बह चवरासी भूरि ॥४४॥
बुद्धि मारिये सुद्धि करि, मन को मैदा कीन ।
अहंकार का हद्द कै, चित्त चूर कै दीन ॥४५॥
रसना को बसना रहै, लिंग सिंग का तूरि ।
नैन को चैन चबाइकै, श्रवन गवन करि दूरि ॥४६॥
नासा आसा मारि कै, खाल करै बेहाल ।
होय फकीरा फिकिरि बिन, फारि काल का जाल ॥४७॥
छीन करै बल छुधा को, कर का करम नेवारि ।
पावहि मारै ठाव पर, जाय फिकिरि सब मारि ॥४८॥
त्रिस्ना तनिक न राखिये, ममता मूरि उखारि ।
रागनि डारै राख करि, देषहि दूरि निकारि ॥४९॥
तीनि अवस्था त्यागि कै, गुन को हरै गुमान ।
पंच भूत का बूत हनि, परा रहै मैदान ॥५०॥
मोर तोर को तैं करै, मैं मुरदा करि डारु ।
अब फकीर यहि तरह ते, पापिनि फिकिरि पछारु ॥५१॥
सुख इच्छा मिच्छा करै, भै की भूजै भार ।
त्यागु प्रतिष्ठा को सदा, ज्यों बिष्टा भिनसार ॥५२॥
अति भारी जरि फिकिरि की, प्रबल दिखाई देय ।
सोरि रहन पावै नहीं, सोइ परम पद लेय ॥५३॥

दोहा—आसा को दासी करै, फाँसी बाँधै पाँव।
हारै मारि घसीटि कै, तब फकीर को नाव ॥५४॥
तब बिन फिकिरि फकीर है, सुनो फकीरा लोग।
लिये फकीरी त्याग है, तिहूँ लोक का भोग ॥५५॥
सकल प्रकृति फैलाव है, बिना तजे सुख नाहिं।
कोउ तम गुन रज गुन बँधे, कोऊ सतो गुन माँहि ॥५६॥
भली फकीरी बने की, लोग कहैं सब तौन।
बनी फकीरी ताहि की, फेरि न आवा गौन ॥५७॥
तन मन इन्द्री बसि भई, लहे ज्ञान बैराग।
बनी फकीरी ताहि की, राम चरन अनुराग ॥५८॥
भजत भजत जे भजि गये, ब्रह्म भये तन येह।
बनी फकीरी ताहि की, कछु न रह्यौ सन्देह ॥५९॥
कतल किया जिन मोह दल, रही नहीं कछु चाहि।
सब जग देखा ब्रह्म मैं, बनी फकीरी ताहि ॥६०॥
संसै आस बिनास कै, रही न कोऊ ऊब।
'बना दास' हमरे मते, बनी फकीरी खूब ॥६१॥
बनी फकीरी ताहि की, जे जन जीवन मुक्त।
बिगरी जे बसि बासना, करै करोरिन जुक्त ॥६२॥
तन मन इन्द्री बसि नहीं, त्रिस्ना आस अधीन।
बिगरि फकीरी सो गई, दाम चाम जल मीन ॥६३॥
रिद्धि सिद्धि के बसि भये, तजि रघुबीर सनेह।
बिगरि फकीरी सो गई, नहिं यामें सन्देह ॥६४॥
मान बड़ाई में फँसे, भजन राह गै छूटि।
स्वाद सिंगार पियार भो, गई फकीरी लूटि ॥६५॥
धरनि धाम बढ़ती भई, बहु सुख संपति पास।
भक्ति ज्ञान बैराग नहिं, भई फकीरी नास ॥६६॥

दोहा—निसदिन मन बेवहार में, निसिदिन आस अधीन ।
निसि दिन जोगबल जगत मन, मृषा फकीरी कीन ।।६७।।

चौगला—लै आये कुछ पैसा भोजन नित पर गाँठ निहारे ।
'बना दास' ते हमरे मत से बोरि फकीरी डारे ।।६८।।

हरि मारग चढ़िकै जे लउटे कामिनि कनक अधीना ।
मुख मसि लागि भागि जनु रन से बोरि फकीरी दीना ।।६९।।

मैं गुन ज्ञान हीन सब ही बिधि तापर पर अधीना ।
राम सूत्र धर सबहि कहावत मोर नहीं कछु कीना ।।७०।।
अब रहि ब्रीड़ न है हर दम मे नाहीं कोउ भाँती ।
तन मन इन्द्री रोम रोम हरि ताते सीतल छाती ।।७१।।

हेरौं बहुरि मिलै हरि नाहीं मही येक सब काला ।
कासौं कहौं कवन जन बूझै ऐसा अद्भुत ख्याला ।।७२।।
हम हरि हरि हम यह दम दम भरि टरि न सकै कोउ भाँती ।
ताते देस काल नहि जानत कहाँ दिवस औ राती ।।७३।।
रात पीत सित असित हरित, नहि अँधेर उजियारा ।
आवै जाय मरै नहि जनमैं नहीं बृद्ध नहि बारा ।।७४।।
चौड़ा लाम दूरि नहि नेरे आदि अन्त मधि हीना ।
राव न रंक स्वामि नहि चेरा नहि पीना नहि खीना ।।७५।।
सब में राजित नहि काहू में कमी नहीं तिल येका ।
सब कहि थकै पार नहि पावै ऐसा ब्रह्म बिबेका ।।७६।।
हो सामुद्र समीर चित्त ते लहरि सरीर अनेका ।
थावर जंगम भान होत सब परमातम निति येका ।।७७।।

चित्त किरिन लह आतम भानुहि तब प्रपंच नहिकोई ।
सदा एक रस सुख को सागर ज्ञान प्रलै है सोई ।।७८।।
अंतःकरन लीन जव आतम हेरै नहि संसारा ।
'बना दास' जब चारि जमत है तब जग बिबिध प्रकारा ।।७९।।

चौगला–जाके अंतःकरन लीन भे ज्ञान प्रलै तेहि आई ।
सिष्टि प्रलै तिथि रही न ताको जियत मुक्ति जिन पाई ॥८०॥
तब फिरि बंध मुक्त भ्रम दोऊ दूजा रहा न कोई ।
अबिचल सिन्धु बिना लहरी को सत चित आनंद सोई ॥८१॥

सूरता निरूपण अंग

घना०-राम नाम गुर सखा मातु पितु स्वामी
सेवि राम नाम नात मीत राम नाम बित्त है ।
राम नाम तीरथ बरत तप दान मख
राम नाम नेम जोग भटकत कित्त है ।
राम नाम प्रान जीव सीव सब साधन को
श्रुति औ पुरान सार चित्त हू को चित्त है ।
'बना दास' कामधेनु कामतरु कोटि गुना
राम नाम सम मेरे कोऊ नाहिं हित्त है ॥१॥

दोहा–धर पर सिर राखै नहीं, साधु सोई रन सूर ।
कतल करै दल मोह को, हाजिर सदा हुजूर ॥२॥
कादर को नहिं आदरै, कैसो होय नरेस ।
'बना दास' कस मानिहैं, राम कुसल सब देस ॥३॥
सूर समर से कठिन है, साधु समर बर जोर ।
वह छन भरि यह जनम भरि, मचा रैन दिन सोर ॥४॥
तन रिपु मन रिपु जगत रिपु, सुर रिपु बारहिबार ।
इन्द्री काल औ कर्म रिपु, गुन सुभाव बरियार ॥५॥

दोहा–काम क्रोध मद मोह रिपु, माया कटक प्रचंड ।
लोभ राग औ बेष रिपु, दंभ कपट पाखंड ।।६।।
आसा त्रिस्ना प्रबल रिपु, रिपु रिधि सिद्धि अनेक ।
छुधा पिपासा सोक रिपु, भै संसै अबिबेक ।।७।।
धरनि धाम धन सुअन रिपु, त्रिय रिपु प्रिय परिवार ।
जाति पाँति जामाति रिपु, सेवक सखा अपार ।।८।।
बिधि रिपु अवर निषेद रिपु, निद्रा पुन्नि औ पाप ।
मान प्रतिष्ठा सकल रिपु, षट उर्मी त्रैताप ।।९।।
मंत्र जंत्र औ तंत्र रिपु, दिच्छा अवरि भभूत ।
आसिरबाद औ श्राप रिपु, कहँ लै कहौं अकूत ।।१०।।
सोच औ चाह रसायन, कहूँ दयो रिपु होय ।
बूटी जरी अनेक रिपु, कहँ लगि बरनै कोय ।।११।।
जम रिपु अरु जम दूत रिपु, जनम मरन रिपु आहि ।
चौरासी कलिकाल रिपु, पटपर दीजे काहि ।।१२।।
रिपु समूह कहँ लै कही, बरनत नहीं सिराहि ।
राम गुरू अरु सन्त हित, और सबै रिपु आहि ।।१३।।

चौगला–बेष केसरिया है सूरन को, कादर की पतिजाई ।
'दास बना' रघुबर के बल से, पाव को सकै चलाई ।।१४।।

दोहा–साधु अकेला एक दिसि, यक दिसि आमाझोर ।
आठ पहर की कहर है, जुद्धि मचा अति घोर ।।१५।।
सदा सहायक तीनि हैं, गुरू सन्त पुनि राम ।
यह वोहू दिसि लखि परत, जाको निंदक नाम ।।१६।।
निंदक मम जुग जुग जियै, पियै सकल मल नीर ।
ग्राम सुअर मैला भखै, वह चक दूषन भीर ।।१७।।
लड़ै सन्त रन सूरवा, उर में अति उतसाह ।
मुरै न बिघन अनेक से, हरि के हाथ निबाह ।।१८।।

दोहा–धीरज का रथ साजिकै, धर्म धुजा फहरात ।
तीखे चारि तुरंग हैं, समर समै हरषात ॥१९॥
हिम्मति औ उतसाह है, सरधा चाउ बिचार ।
सत्ति संकलप सारथी, राखत सदा सम्हार ॥२०॥
ज्ञान कवच बिज्ञान को, सर पर टोप अनूप ।
राम नाम तरवारि है, छमा ढाल अति चूप ॥२१॥
चौगला-लाखों में कोउ सूर रंगत हैं, उर उतसाह अनेका ।
पीत रंगि पाछे पग लौटे, कादरता अबिबेका ॥२२॥
श्री गुरु कृपा कमान है, संजम नाना बान ।
छुरी कटारी नेम सब, तप तरकस परमान ॥२३॥
बरछी चोख बिराग है, भक्ति छत्र की छाँह ।
श्रवन मन निध्यास तहँ, तदाकार बल बाँह ॥२४॥
आत्म निबेदन सख्य आदि दै, सुमिरन सुमर अपारा ।
अरचन बंदन अरु परसेवन, मोह कटक संघारा ॥२५॥
जम औ नियम सन्त की सेवा, सैन बिलच्छन बाँकी ।
येड़ा का मोरे ऊपर से, मनहुँ परै सिर चाकी ॥२६॥
जोग जुक्ति गोली बहु बरसैं, तोप बिबेक को गोला ।
जहँ तहँ कायर भाग चले, बहु घायल लहे खटोला ॥२७॥
ढोल नफीर तुर्रही डफला, बजे जुझाऊ बाजा ।
सुजस नकीब अलापत कडखा जै जै उठत अवाजा ॥२८॥
मारु मारु धरु धरु धरु मारहु धोर सब्द अधिकाई ।
कादर कलई छूटि जात बहु बजत संख सहनाई ॥२९॥
है हाथी हलकंप उठत अति जुद्धि भूमि हिय माहीं ।
सूरन के मन चाव चौगुनो कायर सकल पराहीं ॥३०॥
रुधिर की धार अपार चली बहि जहँ तहँ घायल कहरैं ।
मनहु अर्ध जल दीन परे सब जोगिनि जहँ तहँ टहरैं ॥३१॥

दो०-भट बेताल कपाल बजावत अन्तावरि गर डारे।
खाहिं हुआहिं शृकाल स्वान बहु जहँ तहँ घोर विकारे ॥३२॥
कुही चील ले उड़े हाथ पगु छीनि छीनि येक खाहीं।
महा मोह भट कटक गया कटि तबहुँ न पेट अघाहीं ॥३३॥
रुंड मुंड मैं मेदिनि दीसत उपमा कबि नहिं पावैं।
खप्पर सकल जोगिनी संचत गीत कालिका गावैं ॥३४॥
गीध मसान मारु अति भारी लोभ बही सरि जाहीं।
गीध चील बैठे खेलहिं जनु बहु नावरि जल माँही ॥३५॥
छुरी कटारी ढाल बहै बहु मनहु कच्छ अरु मंछी।
श्री रघुबीर निगाह परी कहुँ कहे जुद्धि मैं अच्छी ॥३६॥
'दास बना' दोउ हाथ जोहारे जाय कमल पद पाहीं।
मैं तो नाथ नहीं कछु लायक कृपा किये गहि बाहीं ॥३७॥
कहुँ कहुँ बेद पुरान पुकारत राम कमल हिय माहीं।
जहँ तहँ सुना सन्त की बानी ताते अचरज नाहीं ॥३८॥
जै अरु अजै नाथ के हाथे निज मथि किमि धरिये।
बहुत काल ते परी लराई ताते उर कछु डरिये ॥३९॥
हृदय भूमि जुद्ध होत हरि हृदै कमल में बासा।
ताते राजकुमार कौतुकी निकटहि लखत तमासा ॥४०॥
आसै कछुक महूँ लखि पायौ तुरत हरषि उठि धायौ।
'दास बना' की आस पूर किये तुरतहिं निकट बुलायो ॥४१॥
अब सुभाव जाने रघुबर को जन को बेगि जितावैं।
'बना दास' बिन मिटे मोह दल कोउ न परम पद पावै ॥४२॥
जौ हरि चहिहैं एक न उठिहैं सकल मरे रन माँही।
पीजै पीनी जोग न कोई मिटिगे सन्सै नाहीं ॥४३॥
पौन तनै पुनि आइ लखे सब रन चरित्र बरबीरा।
'दास बना' दै बाँह बसाये हुकुम सिया रघुबीरा ॥४४॥

चौगला—फिर दोहाई उर अन्तर में जब से राम कृपाला।
तब से नहिं कोउ देत देखाई मरिगे करि मुख काला ॥४५॥
अब आनन्द अमात न उर में सत्रुन से जय पाई।
तापर प्रभु की कृपा बिचारी सकौं नहीं मुख गाई ॥४६॥
पाँच पारचे की खिल्लत किये राम राम निज हाथे।
दासबास कृतकृत्त पाय प्रभु कर परसे मम माथे ॥४७॥
ज्ञान अवर बिज्ञान बिरति पुनि भक्ति सान्ति सुख रूपा।
'बना दास' अहदी को दरजा बकसे कौसल भूपा ॥४८॥
बिरति धर्म अरु ज्ञान खड्ग बिज्ञान टोप सिर साजे।
भक्ति सनाह सान्ति गज ऊपर 'दास बना' अति राजे ॥४९॥
रेनु ते किये सुमेरु कृपानिधि हौं कछु लायक नाहीं।
हरदम रहौं हजूर रैन दिन अब चाही कछु नाहीं ॥५०॥
जै जैकार सदा कौशल पति 'दास बना' जग गावै।
द्वारे परा दन्द-दसरथ के राम प्रसादी पावै ॥५१॥

सूर समूह राम दल भारी, सेवक सुभट अपारा।
केते इरषा आगि जरति है बहुते करत पियारा ॥५२॥
सदा रीति यह दरबानन की ताते संसै नाहीं।
कृपा दिष्टि निरखत रघुबर की मगन रहौं मन माहीं ॥५३॥
मैं जैसो तब हौं तैसो अब यह रघुबीर बड़ाई।
'दास बना' प्रभु सरन आइकै को न अभय पद पाई ॥५४॥
जुग जुग बिरद बिराजत नूतन श्रुति पुरान मुनि गावै।
अधम उधारन पतितन तारन असरन सरन बतावै ॥५५॥
सो भरि नैनन आज बिलोके पाये निज मन माना।
'दास बना' प्रभु कृत किमि गोवै ताते प्रकट बखाना ॥५६॥
यह तन भयौ निबेदन तुमरे राम करौ जस चाहौ।
मोहि अवर नाहीं कछु चाही किये सो नेम निबाहौ ॥५७॥

बैरिन मारि मेटि सब संसै सान्ति सेज पर सोवै ।
ज्ञान नींद कहुँ मिलत न उपमा कृपा राम की जोवै ।।५८।।

भक्ति निरूपण अंग

दोहा–जाय न सुबरन मलिनता, धोवै अमृत लगाय ।
दूध दही घृत तेल जल, लाखन करै उपाय ।।१।।
सोई स्वर्न दै अग्नि में, तप्त करै भलि भाँति ।
सुद्ध होय निज रूपलहि, अधिक कान्ति अधिकाति ।।२।।
तेहि बिधि जप तप जोग मख, दान करै मन लाय ।
ब्रत तीरथ जम निअम करु, जे साधन समुदाय ।।३।।
सत्ति सउच दाया दमन, इन्द्री करै अचार ।
जहँ लै साधन श्रुति कहै, करै बिबिध परकार ।।४।।
प्रेम भक्ति आये बिना, अन्तर मल नहिं जाय ।
होइ न ज्ञान बिराग दृढ़, कोटिन करै उपाय ।।५।।
भोजन करै अनेक बिधि, सब प्रकार सब कोय ।
जब लगि पावै अन्न नहिं, मन सन्तुष्ट न होय ।।६।।
जैसे बिंजन बहुत है, बनवै बिबिध प्रकार ।
लोन बिना फीका सबै, करै कोटि उपचार ।।७।।
जाके लगे पियास अति, पियै सस्र घृत छीर ।
दधि सरबत सब कछु पियै, जाय नहीं बिन नीर ।।८।।
जिमि तिय पूरुष अति सुघर, नाना भूषन धारि ।
कछु सोभा रहि जात नहिं, जौ पट लेइ उतारि ।।९।।

दोहा–तैसे साधन सकल हैं, बिन आये अनुराग।
जथा सिंघ बन जीव मँह, मिलै जाहि बड़भाग ।।१०।।
बिन आये अनुराग उर, राम मिलन अति दूरि।
निज हिय पुनि श्रुति कहत हैं, रहे सकल भरि पूरि ।।११।।
सजल नयन बानी सिथिल, रोम खड़े सब अंग।
गहवर मन अति गूढ़ गति, जानै कवन प्रसंग ।।१२।।
श्रवन होत ही राम जस, तब यह दसा बिसेस।
कहत सुनत सुमिरन करत, डूबे रहत हमेस ।।१३।।
जब लगि नहिं ऐसी दसा, तब लगि बुद्धि न सुद्ध।
'बना दास' करते नहीं, कोउ प्रमान जन बुद्ध ।।१४।।
जब आवै ऐसी भगति, तबै सकल मल जाय।
लहै आतमा रूप निज, आवा गवन नसाय ।।१५।।
ताहि को कहिये परा, सोइ तरा संसार।
सोइ भक्ती उतकिष्ट अति, कवन जाय कहि पार ।।१६।।
आतमनिबेदन बिन किये, कहा प्रेम परि पूरि।
जब लगि ममता तन बिषे, 'बना दास' हरि दूरि ।।१७।।
ज्ञान अवर बिज्ञान से, ताते नहिं कछु भेद।
उहाँ सबन की एकता, इमि भाषत बुध बेद ।।१८।।
अचल ज्ञान बैराग तब, थल बिन कित ठहराहि।
'बना दास' हरि भक्ति बिन, सोभौ पावत नाहिं ।।१९।।
ऐसी रघुबर की भगति, प्रगट उर जाहि।
पट तूर काको दीजिये, हेरे तिहूँ पुर नाहिं ।।२०।।
सुद्ध आतमा होन हित, दूजी नाहिं उपाय।
'बना दास' अनुराग बिन, अन्तर मल नहिं जाय ।।२१।।
श्रुति पुरान षट सास्त्र मिलि, साधन की मिति नाहिं।
मिलै न प्रभु अनुराग बिन, जद्यति निज घट माँहि ।।२२।।

दोहा—राम रूप पाये बिना, नहि सरूप को ज्ञान।
'बना दास' कबहुँ न मिलै, धरै कोटि बिधि ध्यान ॥२३॥

आतम ज्ञान भये बिना, जाय न रुज संसार।
'बना दास' पचि पचि मरै, कोटि करै उपचार ॥२४॥

बिन रबि उदै न निसि नसै, चारिउ जुग परमान।
तैसे छूटै-जगत नहि, बिना आतमा ज्ञान ॥२५॥

ज्ञान भयौ तब जग गयौ, भूलेहु नहि दरसाय।
'बनादास' किमि रहि सकै, रबि रजनी यक माँहि ॥२६॥

जो कोई राखा चहै, आगि तिरिनि यक माँहि।
,बना दास' करु कोटि बिधि, राखन वाला नाहिं ॥२७॥

जग है तब लै है जगै, ज्ञान भयो तब ज्ञान।
'बना दास' कैसे रहै, दुइ कृपान यक म्यान ॥२८॥

साउज सिंघ को संग कस, वह मुक्ता वह भोग।
'बना दास' तिमि ब्नत नहि, जगत ज्ञान संजोग ॥२९॥

जग बेवहार न सांति भो, तन मन सांति न कोय।
जहाँ ज्ञान तहँ भक्ति है, सुजन न मानत सोय ॥३०॥

भक्ति भये भावै न कछु, तिनका सम त्रैलोक।
'बना दास कासो कहैं, सपनेहुँ ताहि न सोक ॥३१॥

काहेको बहु पोथी पढ़ै, धरै अमित सिर भार।
सकल बोध मैं राखिये, यह बिसमरन सम्हार ॥३२॥

अवस्था भेद निरूपण अंग

चौ०—जन्म बिराग त्याग गृह दारा। देस त्याग परदेस पधारा।
बाल बिराग पास कछु नाहीं। नहिं काहू को संग कराहीं ॥१॥
पुनि कुमार बिषयनि का त्यागा। इन्द्री दमन सहित अनुरागा।
सैसव सकल करम परित्यागा। श्रुति मरजाद भार जनु लागा ॥२॥
पुनि किसोर तन सो बैरागा। आस उपाय जहर जनु लागा।
तरुन बिराग न साधन कोई। बिधि निषेद की ओर न जोई ॥३॥
भूलेहुँ नहिं कतहुँ अनुरागा। तिसरापन सब बिरति बिरागा।
नहिं कछु संग्रह नहिं कछु त्यागा। चौथे पन ईस्वर को त्यागा ॥४॥
नहीं गुरू नहिं सिष्य बिभागा। गुनातीत सूतो जनु जागा।
नवै अवस्था है बैरागा। जुवा बिराग बासना त्यागा ॥५॥
चौगला—प्रथम गिरस्ती में गुरु करि कै हरि हित कर्म कमावै।
भाषत बेद धर्म बहु माफिक ताहू में चित्त लावै ॥६॥
दूजे करै संग संतन को सतगुर सरनहिं आवै।
तीजे सुनै राम जस निसि दिन कबहुँ न तोष अघावै ॥७॥
चौथे करै गुरू की सेवा निसि दिन बृत्ति अमानी।
'दास बना' मन बचन करम से धरम न दूसर जानी ॥८॥
पंचम ह्वै बिलज्ज निति गावै राम सुजस मन लाई।
'दास बना' नहि त्रिपित लहै कहुँ दूसर नहीं सोहाई ॥९॥
छठये नाम अखंडित सुमिरै सतये करम बिरागा।
अठये लहै सहज सन्तोषहि द्वार द्वार नहिं माँगा ॥१०॥
नवय्ये राम जगत में देखै राम आस बिस्वासा।
नवै अवस्था भक्ती के हैं, धनि जेहि हृदय प्रकासा ॥११॥
चौ०—श्रवन जनम अनुराग कौ जानौ। मनन बालपन बहुरि बखानौ।
भो उत्कंठा जानि सरूपा। सो कुमार जानिये अनूपा ॥१२॥
तीव्र चाह नासै सब आयौ। अब पल छन कछु नाहि सोहायो।

चौ०-तरुन अखंड नयन जल धारा । जनु भादौंबरखान सम्हारा।। १३।।
पल पल पुलक रोम तन सारे । खान पान अरु नींद बिसारे।। १४।।
गद गद कंठ बोलि नहिं आवै । गहबर ह्रिदै देह नहिं भावै।
चाहत नोचि-नोचि तन फेका । राम बिना धृग जन्म अनेका ।। १५।।
छिन छिन माँहि देह सुधि भूलें । सुरति सरूप हिंडोला झूलें ।
जुवा स्याम सुन्दर दोउ जोरी। को छबि कहै किसोर किसोरी।। १६।।
जबहि मिले मन भो बिश्रामा । मानत नहीं त्रिपित बसु जामा ।
जिमि कामी नवीन तिय पाई । त्रिपित नहीं कहूँ निसि दिन जाई।। १७।।
तब अनुराग सान्ति कछु भयऊ । डर कँगलाई दूरि दिसि गयऊ ।
कबहुँ मिलन पुनि कबहुँ बिछोहा । वह अद्‌भुत सुख को जन जोहा ।। १८।।
को कहि सकै कवन तेहि बूझैं। सो जानै जो जीवत जूझै ।
तिसरे पन ठहरे सिय रामा । ह्रिदै कमल में अचल मुकामा ।। १९।।
अब आनन्द कवनि बिधि गावै । नहिं मन बुद्धि बचन में आवै ।
हेरत पटतर कतहुँ न पावै। लोक तीनि चहुँ बेद थहावै ।।२०।।
सेस सारदा सकहिं न गाई । कबि कोबिद किमि पारहि जाई ।
चौथे पन दोऊ भये एका। ब्रह्म जीव को गयो बिबेका ।।२१।।
ब्रह्मानन्द पुरान बखानै। ऐसा अगम न बेदहु जानै ।
सो आनन्द सकै को गाई। सोइ जानै जो तहाँ समाई ।।२२।।

दोहा—नवैं अवस्था भक्ति की, नव बिराग अनुराग ।
'बना दास' अति बालमति, निज रुचि कीन बिभाग ।।२३।।
ज्ञान अवस्था नव किये, 'बना दास' परमान ।
अब ताको बेवरा करौं, मति अनुमान बखान ।।२४।।
जनम बाल कौमार है, सैसव बहुरि किसोर ।
तरुन जुवापन तीसरो, बिरधा सब सिरमौर ।।२५।।
जन्म गृहाश्रम को तजब, सब सनबन्ध सनेह ।
सास्त्र ज्ञान सत्संग बहु, पुनि बालापन येह ।।२६।।

दोहा—जब उपजो रघुबर चरन, छन छन नव अनुराग ।
सजल पुलक बानी थकित, लह कुमार बड़ भाग ॥२७॥
सैसव सिय के सहित उर, जब परगट भे राम ।
अनुभव उदै अभंग भो, सो किसोर सुख धाम ॥२८॥
जुवा प्रबल बैराग जब, गळित देह अभिमान ।
पंचौ जथा खग पंख बिन, थकि इन्द्री मन प्रान ॥२९॥
तिसरा पन तिहुँ लोक में, कछु न देखाई दीन ।
प्रलै सिष्टि थिति भाज नहिं, भो तुरिया पद लीन ॥३०॥
चारि अवस्था तीनि गुन, परे ब्रह्म निर्बान ।
सुद्ध बुद्ध सो चौथपन, को करि सकै बखान ॥३१॥
बृद्ध अवस्था ज्ञान की, अति दुरलभ पद सोय ।
उपमा ताकी है नहीं, सो जानै जो होय ॥३२॥
चारिउ उपजत एक संग, क्रम क्रम बाढ़त जात ।
'बना दास' पुनि अन्त में, एकै माँह समात ॥३३॥
बिरला जानत भेद यह, बड़ भागी मति धीर ।
भई न गोड़ बेवाय जेहि, का जानै पर पीर ॥३४॥

चौगला-सकल ग्रंथ सागर के माफिक जनि है सन्त सयाना ।
तामें है नव रतन निरूपन ताको करत बखाना ॥३५॥
नाम उपासना भक्ति बिरति पुनि तत्तु निरूपन जाने ।
बहुरि ज्ञान बिज्ञान सान्ति है अरु कैबल्य बखाने ॥३६॥
येक येक हैं मुक्ति के दाता धन्नि सो जेहि उर आवै ।
नवउ मिलै अति राम कृपा ते महिमा अगम को गावै ॥३७॥
बहुरि जोग के आठ अंग हैं बानी बिबिध प्रकारा ।
कर्मकांड बिधि पूर्वक नाहीं जाते मन अति हारा ॥३८॥

जगत् मिथ्या निरूपण अंग

दोहा—आदिहि रज अरु बिर्ज हैं, अंते कृमि बिट भस्म।
मधि में बिन काबू सबै, तासु आस करु कस्म ॥१॥
सोरठा—केरा तरु नहिं सार, सर्प नहीं रजु के बिषे।
निस्चै पुहुमि दरार, 'बना दास' कासों कहै ॥२॥
दोहा—मृग त्रिस्ना में जल नहीं, रजत न सीपी माँहि।
जिमि अकास में नीलता, तिमि जग जानौ नाहिं ॥३॥
दूरि पायकै नीलता, इहाँ न कछू देखाय।
तिमि भ्रम ते यह जगत है, ज्ञान भये मिटि जाय ॥४॥
नभ नगरी पावक लगो, सींचत म्रिग जल लोग।
बंझा सुत के ब्याह में, चाहत खटरस भोग ॥५॥
नभ तड़ाग को कमल लै, म्रिग त्रिस्ना को नीर।
ससा सींग सुर पूजते, सुख से रहै सरीर ॥६॥
कमठ-बार के जार में, बँझो गगन गजराज।
जहँ तहँ धाये लोग सब, भयो बड़ो सुभ काज ॥७॥
राजा कहै हमार है हाकिम कह कस तोर।
रैयति लै भागो चहै, साहु कहै धन मोर ॥८॥
होत कलह ठवरै, ठवर, हारि न मानत्त कोय।
जाँघ मारि ब्राह्मन मरै, होना होय सो होय ॥९॥
बेद लिये पंडित किते, काजी लिये कुरान।
दिनौ राति पचि पचि मरैं, हम पावैं नहिं आन ॥१०॥
बादसाह सुत बाँझ को, ताकी भारी ख्याति।
परी अदालति तासु घर, मिसिलि करैं दिन राति ॥११॥
फैसल होय न काल तिहुँ, कोटिन करै उपाय।
'बना दास' कासों कहैं, ऐसा जग दरसाय ॥१२॥
लखैं तमासा सन्त जन, मगन सहज सुख माँहि।
झगरा टूटन जोग नहिं, ताते निकट न जाँहि ॥१३॥

दोहा—कोटि जतन कोऊ करै, बिना तेज नहि कान्ति।
जब जग हेरे ना मिलै, तब आवै पद सान्ति ॥१४॥
ऐसो जो कोइ सन्त है, साधुन में सिरताज।
चारि बेद ठाति ना कहैं, कबि कोबिद उर लाज ॥१५॥

सवैया—ज्ञान अखंड लह्यौ जबहीं, ब्रहमंड को नास भयो तेहि काला।
सोक औ मोह सन्देह गयो भय है अभिअन्तर बोध को माला।
लोक औ बेद प्रपंच मिटो जब मानहु-पान परो घन पाला।
'दास बना' न अनन्द अमात जरो अति काल को जाल कराला ॥१६॥

घना०—पाप झूठ पुन्नि झूठ स्वर्ग झूठ नर्क झूठ
काल झूठ कर्म झूठ झूठ गुन दोष है।
तन झूठ मन झूठ माया झूठ मोह झूठ
जागृत स्वपन झूठ झूठ राग रोष है॥
काम झूठ लाभ झूठ जोग झूठ छेम झूठ
हानि झूठ माया झूठ झूठ मर्न पोष है।
तत्त् झूठ प्रान झूठ नवा औ पुरान झूठ
हर्ष झूठ सोक झूठ झूठ बंध मोष है ॥१७॥
धन झूठ धाम झूठ कुटुम परिवार झूठ
राज झूठ काज झूठ झूठ जग जाल है।
दिन झूठ राति झूठ सोम झूठ सूर झूठ
तारा झूठ बीथी झूठ झूट बृद्ध बाल है॥
देव झूठ दैत झूठ नर झूठ नाग झूठ
जन्म झूठ मर्न झूठ झूठ सब ख्याल है।
स्याम झूठ सेत झूठ बरन झूठ अकार झूठ
'बना दास' झूठै झूठ झूठ में बहाल है ॥१८॥
कहब करब झूठ देखब सुनब झूठ
बैठब उठब झूठ झूठे को ठगन है।

त्यागब गहब झूठ जाब औ रहब झूठ
मान अपमान झूठ झूठे सो लगन है।
सुख झूठ दुःख झूठ देब झूठ लेब झूठ
आस औ भरोस झूठ तगन अगन है।
ऊँच झूठ नीच झूठ हार झूठ जीत झूठ
'बना दास' झूठै झूठ झूठ में मगन है ॥१९॥
जाग्रत औ सपन सुषोपति अतीत गुन
मन बुद्धि चित्त अहंकार की न गति है।
सास्त्र औ पुरान हारे बेद नेति नेति कहै
पैरि पैरि थकि रही सबही की मति है ॥
आदि अन्त मधि हीन जीर न नवीन नाहीं
बचन न आइ सकै अद्भुत जुक्ति है।
'बना दास' ताते यह सकल प्रपंच झूठ
भूत औ भविष्य बर्तमान ब्रह्म सक्ति है ॥२०॥

निःकामराज निरूपण अंग

दोहा—बिना सुराई सार कहँ, कार नहीं कोउ जोय।
'बना दास' भव पार को, कादर कैसो होय ॥१॥
सिर काटे पाछे सुखी, दुःखी फिरत सब जोय।
'बना दास' काटे कोई, कोटिन मद्धे कोय ॥२॥
अब जगतू जनि आउ लग, मग त्यागी जिन तोर।
भग भोगिन को लेत किन, जे सब दिन के चोर ॥३॥
भग भोगिन को भच्छि कै, पेट भरत नहिं तोर।
तोहि भच्छन करि लेहिंगे, ज्ञान बिराग बरोर ॥४॥
समुझाये माने नहीं, जतन किये हम कोटि।
बोढ़नी ज्ञान बिराग के, गये सहज ही बोढ़ि ॥५॥

दोहा—छोटे मोटे झीन भी, बेन्दउर गे भहराय।
तुरिया तूल निकारि लिय, तब सुख कहा न जाय ॥६॥
तुरिया कुरिया में परे, जरे तिमंजिले धाम।
सोवत सथरी सान्ति पर, 'बना दास' बसु जाम ॥७॥
नहीं जाम नहि जामिनी, नहीं दिवस नहि मास।
नहीं साम नहि भोर है, देस काल नहिं आस ॥८॥
भक्ति बिना नहि ज्ञान है, ज्ञान बिना नहि मुक्ति।
मुक्ति बिना नहि सान्ति है, करै करोरिन जुक्ति ॥९॥
उक्ति जुक्ति करते गये, 'बना दास' बहु काल।
जब से छुटे ठेकान से, तब से आज बहाल ॥१०॥
भई बहाली अति बिसद, कद नहि देखे राम।
'वना दास' निज दिसि दिये, ब्रह्मानन्द मुकाम ॥११॥
कवनउ दरजा ना रहा, भोगे सब बेवहार।
'वना दास' अब लखि परा, यह सव ही ते पार ॥१२॥
जहाँ न कोउ बूड़ा तरा, जरा सकल जग जाल।
आगे पीछे ना कोई, भई दूरि भै काल ॥१३॥
गुनातीत गुदरी पहिरि, सोंटा है सव त्याग।
मोटा ज्ञान विराग ते, लोटा तन अनुराग ॥१४॥
कर्म त्याग की करि कुटी, छुटी लिये दिन राति।
आतप-बात निषेद बिधि, ताकी नहीं पोसाति ॥१५॥
बरखा बिघन अनेक हैं, वूंद चुवत नहि कोय।
भया फकीरा फिकिरि बिन, गया सान्ति में सोय ॥१६॥
परारब्दि के भोग जे, ते जनु सेवक साँच।
बखत बखत पर सब करत, रहिगै कोइ न नाच ॥१७॥
कला कुसल कैवल्य सुख, बैठ तखत संतोष।
परा दुलैचा दीनता, भोगत जीवन मोष ॥१८॥

दोहा—छमा छत्र सिर पर सदा, मकुट मान का त्याग ।
समता को उर माल है, सोभा अनुभव लाग ।।१९।।
दफदर-दया देवान है, बोध अगाध अनूप ।
'बना दास' मंत्री सुभग, श्रुति सत संग सरूप ।।२०।।
दिल उदार बकसी सोई, संजम सुभट अनेक ।
'बना दास' मुरछल ढुरत, अति ही बिमल बिबेक ।।२१।।
भया बिसमरन रूप जो, सो पाया परि पूर ।
'बना दास' बिन भय सदा, उतरी संसै मूर ।।२२।।
येसन साधु सरूप है, 'बना दास' सब काल ।
सन्त कृपाते मिलत है, घूमत बहुत कंगाल ।।२३।।
मेरिउ दिसि करिहैं कृपा, साधू बड़े दयाल ।
'बना दास' आसा लगी, हौं जाते बुधि बाल ।।२४।।
बालक से मम बचन जे, लेइहैं तेइ सुधारि ।
'बना दास' बिस्वास मोहि, लगिहि न ताति बयारि ।।२५।।
सन्त अमर सब काल में, अवर मरै सब कोय ।
हैं कालहु के काल जे, तासु मरन कस होय ।।२६।।
एक साधु पद सब परे, अवर तोरे सब कोय ।
'बना दास' जानै सोई, जाके हिय दृग होय ।।२७।।
सन्त कि समता सन्त की, और दूजा कोय ।
'बना दास' जाकी कृपा, आवागवन न होय ।।२८।।
अष्टादस षट्चारि में, करै बिबिध मत बाद ।
अन्त एक सिद्धान्त है, बिन सतसंग न स्वाद ।।२९।।

ज्ञान निरूपण अंग

झूलना-ऐस्वर्ज माधुर्ज का बुर्ज है एक, कोउ आजु लै नाहि दुइ सुर्ज देखा।
पच्छ औ पात में बहे बहुते फिरत, सन्त जन करें नहि तासु लेखा ॥
होत है सिद्धि ऐस्वर्ज माधुर्ज से, उर्झ जब जाय तब परै पेखा।
'बनादास' निर्गुन सगुन माहि जो भेदकर, उपल जल माहि सो करै रेखा ॥१॥

दोहा-तन निबाह भरि चाहिये, अधिकी है दुख खानि।
सोऊ हरि का आसरा, परारब्दि बस जानि ॥२॥
सुख होवै सो हरि कृपा, दुख कर्मन का भोग।
'बना दास' इमि काटिये, मन मूरुख का रोग ॥३॥
राग देष बड़ छोट भय, अस्तुति निंदा त्यागि।
बिषै आस दिष्टिहि तजै, रहै ब्रह्म अनुरागि ॥४॥
यै नव जरि नानत्तु की, 'बना दास' तजि देय।
ह्रिदै न कवनिउ कल्पना, ब्रह्मानन्द सो लेय ॥५॥
बरन नाम आकार से, मनको लेय निकारि।
'बना दास' केवल बरम्ह, देखै आँखि पसारि ॥६॥
तब फिर आपौ ब्रह्म है, दूजा नाहीं कोय।
अनुभव नयन न लखि परत, आवा गवन न होय ॥७॥
मन बुधि बानी के परे, स्वाद कहै फिरि कौन।
उत्तर दीने प्रस्न पर, ना तौ रहिये मौन ॥८॥
ब्रह्मानन्द ठहरि गयौ, जगत भयौ अति छीन।
जैसे जेवरी जरि गई, ऐंठन राख में दीन ॥९॥

सो०-ब्रह्मज्ञान ठहरान, तब जग दीसत भाँति यहि।
जरी बजाज दुकान, जैसे तहँ लखि परत है ॥१०॥

दोहा-ऐसै उनकी देह है, वै सरीर ते भिन्न।
भोगत जीवन मोष सुख, लखि न सकै मति खिन्न ॥११॥
महाप्रलय अरु जग प्रलय, नित्य प्रलै पुनि कल्प।
चारि प्रलै होवा करै, जिव सुख लहै न अल्प ॥१२॥

दोहा—ज्ञान प्रलै अति प्रलै है, जामें भव को अन्त।
'बना दास' जिव ब्रह्म भो, पायउ कोउ कोउ अन्त ।।१३।।
झूठी सकली प्रलै है, जामें जगत न जाय।
ज्ञान प्रलै यह सत्य है, जामें जगत नसाय ।।१४।।
'बना दास' सिष्टिउ बृथा, छन छन पर है नास।
आदि अन्त औ मद्धि में, केवल ब्रह्म प्रकास ।।१५।।
ताते प्रलै न सिष्टि है, दिष्टि परा है फेर।
बरै दीप अज्ञान का, तब हीं मिटै अँधेर ।।१६।।
अनुभव आनँद त्रिप्त नित, निसि दिन देस न काल।
कहाँ प्रलै कहँ सिष्टि थिति, ब्रह्मानन्द बहाल ।।१७।।
बर्न अकार बिकार है, निराकार यह गूढ़।
'बना दास' यहि बिधि रहै, परम तत्तु आरूढ़ ।।१८।।
निज गुन निज मुख से कहै, पर ऐगुन परचार।
पर गुन मुख पर प्रगट कर, यह अबिबेक अपार ।।१९।।
चौगला—अस्तुति निन्दा हानि लाभ अरु सुख दुख में सम रहिये।
'दास बना' अपमान मान नहिं तब यहि राह निबहिये ।।२०।।
दोहा—प्रकृति करै परपंच सब, होय सो मानै नाहिं।
अहं ब्रह्म हिय जब फुरै, सकल जरत या माँहि ।।२१।।
पदुम पात्र जल नहिं लगत, अगिनि परै सो भस्म।
रसना घृत परसै नहीं, सदा ज्ञान को रस्म ।।२२।।
आतम सदा अकर्त्ता, कछु लागत नहिं ताहि।
जाने बिना सरूप के, मानि लेत निज माँहि ।।२३।।
हो नहिं कियौ करौ नहीं, करिहौं नहिं कोउ काल।
बिधि निषेध मो मन नहीं, कटा काल का जाल ।।२४।।
जोग बियोग बनो रहत, देह धरे का धर्म।
जो याको मानै नहीं, सो कहिये निस कर्म ।।२५।।

मन बुधि बचन नयन श्रवन, चित आवत है जोय।
नासमान सो जानिये, माया मय है सोय ॥२६॥
ताते कछू न मानिये, निराकार है एक।
सो हौं ही नहिं दूसरो, याही परम बिबेक ॥२७॥
सत्ति संकलप है यही, जिमि सन गाँठी नीर।
'बना दास' बिकलप नहीं, ताहि कहा भव भीर ॥२८॥

सोरठा—ब्रह्मानन्द अखढ़, आदि मद्धि अवसान बिन।
सोइ परम पद गूढ़, नेति नेति निति निगम कहा ॥२९॥

दोहा—सब ज्ञानन का सार है, यह बिसमरन सम्हार।
पढ़ा सुना याको करै, नहिं भूलै कोउ बार ॥३०॥
अचल रहै निज रूप में, चित्त की बृत्ति सुधारि।
'बना दास' गिरि की तरह, हटै न बिघन बयारि ॥३१॥
जो पाया निज रूप नहिं, बेगि मिलावै ताहि।
यासे सम्मत सो चलै, ताको भव निधि नाहिं ॥३२॥
जे पाये निज रूप को, याको करत बिचार।
सो भूलन पावै नहीं, सब बिधि करै सम्हार ॥३३॥
जथा नाम गुन है तथा, यह बिसमरन सम्हार।
'बना दास' बरनन किये, सो पुर अवध मझार ॥३४॥
हम हम हेरे ना मिलै, दम दम राम अधार।
'दास बना' सोइ साँच है, आतम ज्ञान विचार ॥३५॥
रामै राम सदा रहे, अवर न दूजा कोय।
श्रुति पुरान अरु सन्त मुनि, सबही का मत होय ॥३६॥

चौगला—पैसा टका पास में नाहीं सहुकार किमि कहिये।
'दास बना' बिपरीति बात बहु समुझि मनहि मन रहिये ॥३७॥
बहु नुकसान वाक्व ज्ञानन ते भजन कमाई छूटै।
'दास बना' किमि छूँछ पछोरै नाहक पैया कूटै ॥३८॥

ज्ञान प्रकट बानी थकि जैहै परम सांति उर ऐहै ।
'दास बना' कासो पुनि कहिहै ब्रह्म सुधा रस पैहै ।।३९।।
दोहा–सब से माँगत जे सदा, सुमिरन ध्यान हेराय ।
'दास बना' तब सान्ति कहँ, आसा बसि ह्वै जाय ।।४०।।
ऐसो लाभ नहीं कहुँ, चहुँ जुग चहुँ श्रुति माँहि ।
'बना दास' निज रूप सुख, तिहुँ पुर पटतर नाँहि ।।४१।।
ज्ञान रतन बिन तन मृषा, बन बन धावत कोटि ।
पाये सहज सरूप जे, तोष तखत रहे कोटि ।।४२।।

विज्ञान निरूपण अंग

चौपाई-ब्रह्म लीन सो है बिज्ञाना । त्रिन चिउँटी बिधि एक सामाना ।
सुरभी स्वान सुपाक न भेदा । यही दिष्टि आतम कह बेदा ।।१।।
अस्तुति निन्दा में सम रहै । भली बुरी सब ही की सहै ।
साधु असाधु बड़ा औ छोटा । धनी गरीब दूबरा मोटा ।।२।।
रूप कुरूप औ इष्ट अनिष्टा । सब में बिज्ञानी यक दिष्टा ।
कोई जन सेवा बहु करै । कोई अधम दंड सिर धरै ।।३।।
रुष्ट पुष्ट काहू सो नाहीं । समता बरतत है सब माहीं ।
बिधि निषेद जाके नहि कोई । सुख दुख हरष सोक नहि होई ।।४।।
तत्तु अतत्तु भेद भ्रम नाहीं । निसि दिन मगन ब्रह्म सुख माहीं ।
भक्ति बिराग ज्ञान नहि भाना । बंध मुक्त सब एक समाना ।।५।।
कहा सास्त्र अरु बेद पुराना । हम तुम नाहि न मनहु अजाना ।
दोहा–यह पद साधुन को अगम, जगत कथै बहु ज्ञान ।
एक बोलता सकल में, ब्रह्म छोड़ि नहि आन ।।६।।
चौपाई-अपनी फजिहति नाहि बिचारै । कहै कि साधु लँगोटै धारै ।
स्नान पान अरु आसन सैना । वा बौरहे चैन दिन रैना ।।७।।

नाहीं दिष्टि जवाहिर केरी। अरु नहिं लखै दुकान कचेरी।
बहु बिधि बकै अनाप सनापा। यह कलिजुग को है अति पापा ॥८॥
ज्ञानी मानि नहीं कछु लेई। सदा पदारथ में चित देई।

दोहा–अति ऊँचे बिज्ञान पद, जहाँ न सुरति समाय।
लहै लाख मे एक कोउ, कलि कहँ सस्ती आय ॥९॥
ब्रह्म लीन बिज्ञान पद, सुद्ध ब्रह्म है सान्ति।
'बना दास' अनुभव द्रिगन, नहीं रहै कछु भ्रान्ति ॥१०॥
सकल पदारथ को मृषा, करि डारी जब बुद्धि।
'बना दास' तब होत नहिं, फिरि काहू की सुद्धि ॥११॥
लीन भयो मन ब्रह्म सुख, तब नहिं कछू सोहाय।
सकल भोग भे रोग सम, कब कछु कहा न जाय ॥१२॥
चित चंचलता चूर भै, पूर भया जब काम।
बिन तरंग को सिन्धु जिमि, अबिचल आठो जाम ॥१३॥
मोर तोर मैं तें नहीं, तब हम कहाँ समाय।
'बना दास' जब घट भरा, कछु जल नाहिं अमाय ॥१४॥
सैन सान्ति परिजंक पर, का साधन का सिद्धि।
कहां जीव ईस्वर कहाँ, बिधि निषेध नहिं बिद्धि ॥१५॥
जागृत सांति सुषुप्ति सुख, मुख कहि आवत नाहिं।
स्वपन जागरन ह्वै गयो, नहिं अबिबेक समाहिं ॥१६॥
जात सुषोपति स्वपन सम, तीनिउ केर अभाव।
'बना दास' अब तीनि गुन, पावत नहि कहुँ ठाँव ॥१७॥
ऐसा दुरलभ सन्त को, रूप कहत है सन्त।
'बना दास' कहि सब कथा, सन्त सरूप अनन्त ॥१८॥

चौगला–दिष्टा दिष्ट अदिष्ट बीच में सिष्टि समूह सिरानी।
'बना दास' बहुरी नहि लौटी परे जोग यह जानी ॥१९॥

चौगला—तेहि घर में बिरले कोउ पहुँचे और सबै कोउ अटकै ।
'दास बना' कछु कहो जात नहिं बहु मारग में भटकै ॥२०॥
दीर्घ रोग संसार दूरि भो तब कछु कहा न जाई ।
'दास बना' मन बचन थकित जहँ तहँ सुरति समाई ॥२१॥
हरदम आपै आप अकेला अलबेला बहु रंगी ।
'दास बना' नाहीं गुरु चेला नहिं मेला नहि संगी ॥२२॥
आवै जाय मरै नहि जनमै नहिं पीवै नहि खावै ।
'दास बना' सब रस को भोगी अचरज कहा न जावै ॥२३॥
सुद्ध सरूह अनूप खूब है नहिं कछु वार न पारा ।
'दास बना' नहि पीत असित सित नहिं अँधेर उजियारा ॥२४॥
सोम भानु पावक तहँ नाहीं नहिं बीथी नहि तारा ।
सरग पताल जक्त कछु नाहीं कैसे करै बिचारा ॥२५॥
सास्त्र पुरान बेद तहँ नाहीं नहिं पंडित नहि काजी ।
'दास बना' तिहुँ गुन ते न्यारे आप आप में राजी ॥२६॥
सुखरासी अबिनासी अद्भुत सो सबहिन में बासी ।
'दास बना' जोउ पाय सकत नहिं अति ही परम प्रकासी ॥२७॥
ब्रह्म अचल है अकल अनूपम सो हौं ही नहि दूजा ।
चेतन भरा एक रस पूरन को केहि की करै पूजा ॥२८॥
अति सूछम सर्बज्ञ सनातन सेवक सेवि न कोई ।
सदा एक रस बाहर भीतर रोम रोम मँह सोई ॥२९॥
इन्द्री बुद्धि अहंचित मन सोइ प्रान आगि औ पानी ।
प्रिथी अकास आप ही पूरा सोई पवन अरु पानी ॥३०॥
सबको कर्त्ता बहुरि अकर्त्ता भर्त्ता हर्त्ता भोगी ।
निराकार निर्मल सब न्यारे जोगी सकल बियोगी ॥३१॥
येकै आदि अन्त औ मधि ही दूजा कवन कहावै ।
पुरुसोतम उपजत नहि बिनसत नहिं कहुँ आवै जावै ॥३२॥

आपनि आपनि फुरनि कहे सब, जहँ लगि भे श्रुति संता।
'बना दास' मैं हूँ त्यौं भाषत जो पेरत भगिवन्ता ॥३३॥

दोहा–फुरै तबै याही फुरै, दुरै अवर दुख रूप।
हम परब्रह्म अनादि अज, अद्वय अमल अनूप ॥३४॥
हम ईस्वर परमातम, हम आतम हम राम।
हम ब्यापक चैतन्य धन, सत चित अति सुखधाम ॥३५॥
बासुदेव देवेस हौं, अचल अखंड अपार।
कर्त्ता भर्त्ता भोक्ता, त्रिभुवन का आधार ॥३६॥

चौगला–नौधा ते है प्रेम लच्छना प्रेम ते परा बखानौ।
परा भक्ति बिज्ञान दुहुन का भेद कछू मति मानौ ॥३७॥
ताके परे सांति को जानौ सुख के सिन्धु अपारा।
ताते अरु बिज्ञान परा ते कछुक बीच निरधारा ॥३८॥

दोहा–बुद्धि थकै बानी थकै, मन चित पुनि थकि जाय।
अहंकार जब ही थकै, सहज सरूप समाय।
गो गोचर प्रानौ थकै, तबै देह थकि जाय ॥३९॥
आसा त्रिस्ना बासना, थके सरूप समाय ॥४०॥
राग देष दोऊ थके, साधन सकल सिराय।
बिधि निषेद बेवहार गत, आवागमन नसाय ॥४१॥
जोग छेम इच्छा थकै, षट ऊर्मी थकि जाय।
श्रुति पुरान सुरता थकै, तबै परा गति पाय ॥४२॥
'बना दास' सब कुछ थकै, चेतन नहिं थकि जाय।
जो चाहै सो सब करै, वाको कवन उपाय ॥४३॥
ब्रह्मै ब्रह्म रह्यौ सदा, निकरि गई जीवत्तु।
भाषत बारै बार है, ताते ब्रह्म परत्तु ॥४४॥

सोरठा–हौं चैतन्य सरूप, ब्रह्म निरामै अज अकल।
अद्वय अमल अनूप, सब करता कछु ना करत ॥४५॥

सदा सुद्ध रस एक, परम प्रकास प्रमान बिन ।
नहि मम बिषे अनेक, येक अनेक मही सकल ॥४६॥
दोहा—मम सरूप अति गूढ़, परमातम पूरन सकल ।
पावत मोह बिमूढ़, नित्ति सच्चिदानन्द घन ॥४७॥
पुरुषोतम परधाम, रूप परातपर अहै मम ।
सब घट माँहि मुकाम, सब करता कछु ना करत ॥४८॥
चौगला-परम हंस की पांच बृत्ति है सब कोउ ताहि प्रसंसा ।
कौनी मधुकर और कुटीचर परम हंस औ हंसा ॥४९॥
मुक्त भये बिन पाँचौ कच्चा 'बना दास' अस भाखैं ।
जब लग आसा बासना नाहीं सुजन प्रमान न राखै ॥५०॥

सवैया—आतम अदभुत आनंद सिन्धु अहै घट में कोउ पावत नाहीं ।
बाहेर के सुख में सुख चाहत ढूँढत धावत नाहीं ।
दीन दुखी भयौ काल असंखि से रोग महाभव जावत नाहीं ।
'दास बना' सुख सिन्धु अपार है द्वैत कोउ बिसरावत नाहीं ॥५१॥
दोहा—जाके उर उपजै न कछु, नहि उपजिहि जग माहि ।
नास न काहू की चहै, सो बिनसै फिर नाहि ॥५२॥

चौगला-हमहीं सरगुन हमहीं निरगुन हमहीं दस अवतारा ।
हमहीं एक आतमा पूरन सकल सिष्टि करतारा ॥५३॥
हमहीं पालन पोखन कर्त्ता करै सकल संघारा ।
चर औ अचर सकल हमहीं हैं हमहीं सबसे न्यारा ॥५४॥
हमहीं प्रकृति पुरुष परमातम हमसे अवर न कोई ।
हमरी लीला अमित अलौकिक हम जानत हैं सोई ॥५५॥
हम ही हिय अनेक दरसावैं हमहीं सकल मिटावैं ।
हम ही उर प्रकास नित्त करिकै ब्रह्म ज्ञान ठहरावैं ॥५६॥
ताते जो हमहीं को जानै अवर न दूजा मानै ।
हमरे भावहि प्राप्ति होइ सो नहिं दुतिआ उर आनै ॥५७॥

चौगला-अमल अचल अबिनासी अजै अनादि अनूपा।
अकल अखंड अलौकिक अद्भुत मेरा सहज सरूपा ॥५८॥
आनंद सिन्धु अनीह अलख गति अति उतकिष्ट अपारा।
आदि अन्त मधि जाकी नाहीं सेत पीत नहिं कारा ॥५९॥

सान्ति निरूपण अंग

चौगला-हाड़ हाड़ रग रग में पीरा लिखत बनावत होई।
परहित साधु लिखै हरि प्रेरित दोष लखै सब कोई ॥१॥
सुकृती सुजन देखि कै ताको सहजहिं अति सुख पावैं।
'दासबना' मनबुद्धि रमाई कोउ जनमन मरन मिटावै ॥२॥
बिद्या नहीं भागि में भूलेहु कावि कोस नहिं जानौं।
'दास बना पेरक सीता पति तेहि बल सकल बखानौं ॥३॥

दोहा—राम नाम ते बिरति है, नाम ते सकलौ भक्ति।
तत्तु बोध है नाम ते, अभिमत ज्ञान की सक्ति ॥४॥
नामहिं ते बिज्ञान है, नामहिं ते पद सान्ति।
राम नाम ते रहति नहिं, फिर उर में नहिं भ्रान्ति ॥५॥
सबको अनुभव नामते, बिरला जानत भेद।
जब दूसरि गति ना रहै, नाम हरै सब खेद ॥६॥
नाम उपासक कोटि में, सबसे मोटी बात।
जाके सुमिरन किये ते, इच्छा ना रहि जात ॥७॥
करम बचन मन नाम गति, जागत स्वपन न आनि।
'बना दास' जाके भजे, मुक्तिउ चाह नसान ॥८॥

दोहा—ब्रह्म राम को धाम है, राम नाम सब काल ।
'बना दास' जाके जपे, ब्रह्मानन्द बहाल ॥९॥
कर्म जोग बैराग है, भक्ति ज्ञान बिज्ञान ।
सब साधन के है परे, साण्ति सिद्धि परमान ॥१०॥
पराभक्ति कैवल्य पद, साँति तीनिहू एक ।
गूढ़ गोपि उतकिष्ट अति, जाको छीन बिबेक ॥११॥
प्रलै सिष्टि थिति, भान नहिं, नहिं पुरान श्रुतिज्ञान ।
सास्त्रन का मतबाद नहिं, सोइ साँति परमान ॥१२॥
सब साधन भोजन तथा, त्रिपिती साण्ति कहाय ।
जबही पूरन ह्वै गया, फिरि भरि कवर न खाय ॥१३॥
आतम त्रिप्त अनित्त जग, चित न आवन हार ।
'बना दास' चित्तौ नहीं, तहाँ कहाँ संसार ॥१४॥
बुद्धिमान बुधि त्यागि कै, मन को मैंदा कीन ।
हम हेरे पावै नहीं, सदा ब्रह्म में लीन ॥१५॥
इन्द्रिन को व्यापार गो, भोग अकंटक राज ।
काज कछू करनो नहीं, को करि सकै अकाज ॥१६॥
समधी की धी जब मिली, तब सुख कहा न जाय ।
'बना दास कासौ कहै ससुर मरै सुख पाय ॥१७॥
भई दिगबिजै सार की, गोत कि ह्वै गै नास ।
'बना दास' दोउ कुल मरा, सुख बरसै चहुँ पास ॥१८॥
उजरा राज नृपति सुखी, बाजै हरदम तूर ।
'बना दास' सहती परी, साह मिली भरि पूर ॥१९॥
डर्‌यो दुकाल सुकाल डर, रहिगै कोइ न भीति ।
'बनादास' राजी भयो, राजा गहे अनीति ॥२०॥
अब सुख सोवत सोच तजि, पोच भला नहिं कोय ।
गाफिल गढ़ भीतर गयौ, बैरिन का घर खोय ॥२१॥

दोहा– बेटी खायो बाप को, तब लेटी सुख पाय।
'बनादास' कासों कहै, उलटी पलटी न्याय ॥२२॥
मैया खाया पूत ने, करिहै केसे सूत।
सब को चौपट करि गया, ताते बड़ो सपूत ॥२३॥
जाग्रत और सुषुप्ति की, संधि करै निरधार।
टाँका को तोला रहै, सान्ति सुद्ध टकसार ॥२४॥
अन्तर कीड़त आत्म सुख, अवरहि पीड़त नाहिं।
'बनादास' अस सन्त जे, राम रूप जग माँहि ॥२५॥

चौपाई–सेवक सेवि नहीं गुर चेला। आतम आपै आप अकेला॥
जैसे को तैसा सब काला। आदि अंत औ मद्धि बहाला ॥२६॥

दोहा–गुड़िया खेलत तब गयौ, जब पिय पाये साँच।
'बना दास' दोउ एक भे, गै चवरासी नाच ॥२७॥
तेरह राह त्रिलोक गो, श्रुति पुरान बिस्तार।
'बना दास' आयौ जबै, सारासार बिचार ॥२८॥
तिनुका सम तिहुँ पुर जरा, अनुभव आगि प्रचंड।
निकसो साधन सेस मुख, रहिगो एक अखंठ ॥२९॥
सान्ति सहर की गति कहर, पहर न चौकीदार।
'बना दास' दोउ दल मरा, पाये बिन पैठार ॥३०॥
निति हरतार बजार में, सौदा बेचै कौन।
भोजन बिन बनियै मरै, सून्य परे सब भौन ॥३१॥
रहा चौधरी चेत करि, भोगै सुख भंडार।
'बना दास' तिहुँ गाँव में, परिगा हाहाकार ॥३२॥
करत मलिकई सहर, की पहर गये बहु बीति।
ऐसा सुखिया ना भया, यह देखी बिपरीति ॥३३॥
ज्ञानी गति ज्ञानी लखै, और न जाननहार।
हाथी केर पलान जो, सो गदहे का भार ॥३४॥

दोहा–जिमि भेड़ी ते सिंघ भो, भया रंक पति नाक।
अज्ञानी ते ज्ञान तिमि, फिर नहिं कछु दिमाक ॥३५॥
ब्रह्म कीट परजन्त त्रिन, देखै एक समान।
मोर तोर मैं तैं कहाँ, जहाँ आतमा ज्ञान ॥३६॥
कोऊ बहु सेवा करै, कोउ करै अपराध।
मानै राग न देष कछु, ज्ञानी मतो अगाध ॥३७॥
सदा अगाध समुद्र सम, थाह न पावै कोय।
म्रिगत्रिस्ना सम जग लखै, हरख सोच नहिं होय ॥३८॥
सान्ति सरोवर में परे, मनहुँ अर्ध जल दीन।
'बनादास' बेवहार जग, साधन होत न कीन ॥३९॥
सान्ति सरिस आनन्द नहिं, काको पटतर देय।
नहिं तीनउ पुर में मिलत, फेरि सन्त पद लेय ॥४०॥
सान्ति सहर की गति कहर, गये ते मृतक समान।
अब चेष्टा कैसे करैं, ब्रह्महि पाय हेरान ॥४१॥
सुख सागर है सान्ति पद, थाह न पावत कोय।
'बनादास' कैसे कहैं, पहुँचे जानै सोय ॥४२॥
अन्तःकर्न की गति नहीं, बचनहु नाहिं समाय।
सुरतिउ जहँ रहि जाति नहि, कैसे करै उपाय ॥४३॥
जिमि दल सोभा पोल है, धन को सोभा धर्म।
ज्ञान की सोभा सान्ति तिमि, बिरला जानत मर्म ॥४४॥
जिमि तिय भूखन पिय है, पुनि तन भूषन जीय।
साधु को भूखन सान्ति तिमि, 'बनादास' धरुहीय ॥४५॥
लोन बिना बिंजन जथा, बिन भूषन बर नारि।
तैसे साधू सान्ति बिन, देखा भले बिचारि ॥४६॥
चंद बिना जिमि जामिनी, दीप बिना जिमि धाम।
तैसे साधू सान्ति बिन, ऐसै मुख बिन राम ॥४७॥

दोहा–तन-मन-इन्द्री-बासना, सकल बेगि मिटि जाय।
आसा-त्रिस्ना ना रहै, सो पद सान्ति कहाय ॥४८॥
राग-देष भय ना फुरै, बिधि-निषेध नहिं मान।
सपनेहु सोक-सँदेह नहिं, सो पद सान्ति प्रमान ॥४९॥
भक्ति-ज्ञान-बिज्ञान के, परे सान्ति परमान।
सकल मुक्ति सिरमौर है, जानत सन्त सयान ॥५०॥
सारदूल पद सान्ति है, उपमा दूजो नाहिं।
जिमि उडगन में भास्कर, तिमि सब साधन माँहिं ॥५१॥
सतौ असत जब सान्ति भे, तब गुन प्रगटत नाहिं।
गुनातीत पद गूढ़ अति, सन्त कहत हैं ताहि ॥५२॥
ताहू को सिंगार है, सान्ति सुधारस खानि।
'बनादास' पद सान्ति से, परे मुक्ति नहिं आनि ॥५३॥
प्रकृत पवन जब ही पर्यौ, जर्यौ काल का जाल।
बिन तरंग को सिंधु जिमि, सान्ति ब्रह्म सब काल ॥५४॥
नहिं मन बुधि बानी तहाँ, नहीं चित्त हंकार।
सान्ति भई सुरतिउ जहाँ, कछु न रहा दरकार ॥५५॥
कहन सुनन नहिं गुनन है, हम तुम एक न दोय।
ब्रह्म-जीव नहिं पूर्व-पर, बंध-मुक्त नहिं कोय ॥५६॥
अकथ अगाध अनूप है, अति आचर्ज अपार।
गूढ़ गम्भीर न आदि मधि, नहिं अवसान बिचारि ॥५७॥
उर प्रवाह जब ही मिटै, पलक न लागै नैन।
'बनादास' जानै सोई, बोलि न आवत बैन ॥५८॥
सुनबौ नाहिं सोहात कछु, भई चित्र की रीत।
सकल परे अति ऊँच गति, सोई सान्ति प्रनीत ॥५९॥
बुद्धि-बृत्ति की सुर्ति गै, नहिं मन चित्त हंकार।
सान्ति जहाँ उर फुरन भो, तहाँ कहाँ संसार ॥६०॥

दोहा–कोउ समीप सारूप कह, कोउ सालोक्य प्रमान।
सांति मुक्ति साजुज्जि है, जाते परे न आन ॥६१॥
गंग उदक गंगहिं मिल्यौ, कौन ऊँच को नीच।
तथा जीव ब्रह्महिं मिल्यौ, फेरि नहीं कोउ बीच ॥६२॥

चौगला-साधन सकल पुरान सास्त्र श्रुति सब सीढ़ी को डंडा।
'दासबना' मकान अलगै है जहँ सुख अमल अखंडा ॥६३॥
मिले मकान जाति छुटि सीढ़ी यामें पच्छ न पाता।
'दास बना' जानैगा सोई जो कोठे चढ़ि जाता ॥६४॥
पायस मोहनभोग खात जो खेत न खोदन जावै।
'दास बना' दिष्टान्त न बूझै ताको को समुझावै ॥६५॥
बर्न आकार निकरिगे मनते बानी बहुत न बोलै।
रहि रहि पलक बेर में लागत हाथ पाँव कम डोलै ॥६६॥

दोहा–सन्त को भूखन सान्ति है, दूखन सकल पसार।
जब रूखन पानी चढ़त, सहज बहै संसार ॥६७॥
सांति समाने सन्त जन, रहा देस नहिं काल।
नहिं निसि-दिवस न दिसि-बिदिसि, कहाँ काल का जाल ॥६८॥
हर्ष सोक भय मोह नहिं, माया को परिवार।
पुरुसोतम पूरन सदा, नहिं अँधेर उजियार ॥६९॥
भूत भविषि ब्रतमान नहिं, सदा एकरस देस।
जो जन गया सो ना फिरा, लावै कवन सँदेस ॥७०॥
अति उतकिष्ट अबाध गति, मति न तहाँ रहि जाति।
रूप न रेख बिसेष सुख, अनुभव द्रिग दरसाति ॥७१॥
आपै आप अनूप है, एक होय नहिं तीनि।
बंधन-मुक्तन है नहीं, इत उत नहिं गति झीनि ॥७२॥
अच्छर हू से भिन्न है, कैसे बचन समाय।
मन बुधि चित हंकार कित, सुरतिउ ना रहि जाय ॥७३॥

दोहा–हिम ओरा जल ते भये, गले नीर ह्वै जाय।
लोन खिलौना जल गिरयौ, सो फिरि सकत न आय ॥७४॥
ऐसा अद्भुत देस है, तहाँ कि कवन हवाल।
बानी अन्तहकरन पर, नहिं चुप नहिं बाचाल ॥७५॥

मिति पौष मासे कृष्ण पक्षे एकादस्यां चन्द्रवासरे
संवत् १९३१ सन् १२८१ फ०
मुकाम अयोध्या जी ॥ अनुष्टुप् १८००, छंद १९९३ ॥

रचनायें

महात्मा बनादास ने ६४ ग्रंथों की रचना की थी। उनमें से ६१ की पांडुलिपि इन पंक्तियों के लेखक के पास सुरक्षित हैं, जिनकी नामावली इस प्रकार है—

१-अर्जपत्रिका २-नामनिरूपण ३-रामपंचांग ४-सुरसरि-पंचरत्न ५-विवेकमुक्तावली ६-रामछटा ७-गरजपत्री ८-मोहनी अष्टक ९-अनुराग-विवर्धक रामायण १०-पहाड़ा ११-मात्रामुक्तावली १२-ककहरा-अरिल्ल १३-ककहरा झूलना १४-ककहरा कुण्डलिया १५-ककहरा चौपाई १६- खंडन-खड्ग १७-विक्षेप विनास १८-आत्मबोध १९-नाम-मुक्तावली २०-अनुराग-रत्नावली २१-ब्रह्मसंगम २२-विज्ञान मुक्तावली २३-तत्त्व-प्रकाश वेदान्त २४-सिद्धान्तबोध-वेदान्त २५-शब्दातीत-वेदान्त २६-अनि-वार्य-वेदान्त २७-स्वरूपानन्द वेदान्त २८-अक्षरातीत-वेदान्त २९-अनुभवा-नन्द वेदान्त ३०-वेदान्त पंचाङ्ग ३१-ब्रह्मायनद्वार ३२-ब्रह्मायनतत्त्वनिरूपण ३३-ब्रह्मायन-ज्ञानमुक्तावली ३४-ब्रह्मायन-विज्ञान छत्तीसा ३५-ब्रह्मायन-शांतिसुषुप्ति ३६-ब्रह्मायन-परमात्मबोध ३७-ब्रह्मायन-पराभक्ति-परत्तु ३८-शुद्धबोधवेदान्त-ब्रह्मायन-सार ३९-रकारादि सहस्रनाम ४०-मकारादि सहस्रनाम ४१-बजरंग विजय ४२-उभयप्रबोधक रामायण ४३-विस्मरण-सम्हार ४४-सारशब्दावली ४५-नामपरत्तु ४६-नामपरत्तु संग्रह ४७-बीजक ४८-मुक्त-मुक्तावली ४९-गुरु-महात्म्य ५०-संत सुमिरनी ५१-समस्यावली ५२-समस्या-विनोद ५३-झूलनपचीसी ५४-शिवसुमिरनी ५५-हनुमन्तविजय ५६-रोग-पराजय ५७-गजेन्द्र-पंचदशी ५८-प्रहलाद-पंचदशी ५९-द्रौपदी-पंचदशी ६०-दामदुलाई ६१-अर्जपत्री।

अप्राप्त ग्रंथ

६२-मोक्षमंजरी ६३-सगुनबोधक ६४-बीजक रामगायत्री।